UNIVERSAL LIBRARY

OU_186414

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
GH
Call No H 613
P74Pr
Acc. No 2845
पोद्दार, महावीर प्रसाद
प्राकृतिक चिकित्सा क्या व कैसे

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H 613 P74Pr Accession No G H 2845

Author पोद्दार, महावीर प्रसाद

Title भौतिक विज्ञान

This book should be returned on or before the date marked below

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H613/P74R Accession No. 2845

Author पोद्दार, महावीर प्रसाद

Title प्राकृतिक चिकित्सा क्या व कैसे. 1950.

This book should be returned on or before the date last marked below

16 OCT 1970

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५७

मूल्य

अस्सी नये पैसे

Checked 1969

नेशनल

प्रकाशकीय

'मंडल' से अबतक स्वास्थ्य-संबंधी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई है, लेकिन सिलसिलेमे कोई प्रयत्न नही किया गया । इस पुस्तकके द्वारा उस कार्यका श्रीगणेश किया जा रहा है । इस मालामें कई पुस्तकें निकालनेका विचार है।

इस पुस्तकमें बताया गया है कि रोग क्यों होते है और बीमार पड़ जाने-पर हम किस प्रकार रोग-मुक्त हो सकते है। आगे की पुस्तकोंमें बताया जायगा कि हमारा भोजन किस प्रकारका होना चाहिए तथा स्वास्थ्यके लिए क्या और कितना व्यायाम आवश्यक है।

स्वास्थ्यका प्रश्न प्रत्येक व्यक्तिके साथ गहरा संबंध रखता है । अतः हमे विश्वास है कि ये पुस्तके सबके लिए बड़े लाभकी सिद्ध होंगी।

इस मालाकी पुस्तकोके प्रकाशनके लिए कलकत्तेके श्री धर्मचंद्रजी सरा-वगीने, जो स्वयं प्राकृतिक चिकित्सा-प्रेमी ह, पाच हजार रुपये प्रदान किये है। इसके लिए हम उनके आभारी है ।

हमे बड़ा हर्ष है कि इस मालाका प्रारंभ श्री महाबीरप्रसादजी पोद्दारकी पुस्तकसे हो रहा है । वह स्वयं बड़े अनुभवी चिकित्सक है और जसीडीहमें एक प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्र चला रहे है ।

—मंत्री

भूमिका

प्राकृतिक चिकित्सापर हिंदीमें एक पूरी पुस्तक लिखनेकी मेरी इच्छा हुत दिनोंसे है। इसके लिए अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध सैकड़ों पुस्तकें पढ़ीं। ोन साल (१९४०-४२) जेलमें तो मेरे पास प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी एक ाधारण पुस्तकालय-जैसा ही रहा। श्री घनश्यामदासजी बिडलाने प्राकृतिक वकित्सा की पुस्तकोंका अपना संग्रह मुझे वहां भेज देनेकी कृपा की थी। जेलमें-से ही मैं दो साल तक 'जीवन-साहित्य'का (जब वह प्राकृतिक चिकित्सा-प्रधान पत्र था) संपादन भी करता रहा। अपने अनेक राजनैतिक साथी कैदियोंपर इस चिकित्साके प्रयोग करता रहा। इसके लिए गोरखपुर-जेलके त्कालीन सिविल सर्जन सुपरिंटेंडेंट श्री कक्कड़ने एक दिन मजाकमें कहा भी कि आप Parallel Government (प्रतिद्वंद्वी सरकार) की भांति यहां Parallel Hospital करना चाहते है क्या?

उस समय प्राकृतिक चिकित्सापर एक पुस्तक लिखनी शुरू की थी। सौ-सवासौ पृष्ठ लिखे भी गये, पर वहां लिखनेमें कम, पढ़नेमें मन अधिक लगता था। यों भी, मुझे पढ़ना अधिक और लिखना कम पसंद है। लिखनेकी जरूरत जान पड़नेपर भी, थोड़ा और पढ़ लू, यह पढ़ लूं, वह भी पढ़ लूं, सोचते हुए पढ़ता ही रह जाता हूं। कुछ मित्र उलाहना भी देते हैं—अरे, हमेशा जमा ही किये जाओगे, कुछ खर्च भी करो, यानी लिखो। पर शायद, मेरी प्रकृति कंजूस है, स्वयं निकलता नहीं मुझसे। जबरदस्ती करनी ड़ती है मित्रोंको निकलवाने में। 'कब्ज—कारण और निवारण' पुस्तक का ही हुआ। कुछ हिस्सा लिखकर रखा था, आये यशपालजी, ('जीवन-ाहित्यके' वर्तमान संपादक) उठाकर ले गये, प्रेससे कंपोज कराकर प्रूफ भी दिये। लाचार किताब मुझे पूरी करनी पड़ी।

उसके प्रकाशनसे उत्साहित होकर उन्होंने दूसरी किताबकी मांग

की। मैंने कहा—भाई, मुझे कभी भयंकर कब्ज था, भुक्त-भोगी था मैं उसके बुरे परिणामों का, प्राकृतिक चिकित्सा की बदौलत उससे मैंने छुटकारा पाया था, इसलिए उसपर लिखना तो उचित ही था। अब मुझे प्राकृतिक चिकित्साका विशेष प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने दीजिए, तब दूसरी किताबकी उम्मीद कीजिए।

जवाब मिला—अड़तीस सालसे अपनेपर और लोगोंपर प्राकृतिक चिकित्साके लाभ आप देख रहे हैं, बारह सालमें 'आरोग्य-मंदिर'से आपके सामने हजारों रोगियोंने इस चिकित्सासे फायदा उठाया है, फिर भी अभी आप प्रत्यक्ष ज्ञान की दुहाई देते है!

मेरा प्रत्युत्तर था—अभी बहुत बाकी है, माफ करें, अपनी कमीको मैं आपसे ज्यादा जानता हूं।

इस तरह कहते-सुनते कई साल निकल गये। संयोगोंने चार साल पहले मुझे जसीडीह (संथाल परगना) ला बिठाया। यहां ६०-७० रोगियों का एक प्राकृतिक चिकित्सालय मेरे निरीक्षण में चलने लगा। इस बीच मैंने सैकड़ों को, केवल अन्य चिकित्सा पद्धतियोंसे ही नही, बल्कि जीवनसे भी निराश रोगियोंको प्रकृतिकी कृपासे आराम होते देखा।

यह सब देख-सुनकर प्राकृतिक चिकित्सा पर एक पूरी पुस्तक लिखनेकी इच्छा फिर जागी। लेकिन वही पुरानी आदत 'आड़े' आई कि कुछ और पढ़ लूं। इस बार आयुर्वेदके ग्रंथ एकत्र किये। अथर्ववेद भी मंगवाया। इन सबमें प्राकृतिक चिकित्साके अधिकतर सिद्धांत पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। पास ही मिल गई वस्तु गोपथ ब्राह्मण (१।४) में कहा है—"अथार्वाङेनमेतास्वेवाऽप्स्वन्विच्छेति"—अब पास ही उसे ढूंढो। वह पास ही है। प्राकृतिक चिकित्साका मूल तत्त्व तो यही है कि हमें आरोग्यकारी उपादानोंके लिए दूर जानेकी जरूरत नहीं, वे पास ही हैं। जिन पंच महाभूतोंसे हमारा शरीर निर्मित हुआ है, उन्हींसे उसकी चिकित्सा होनी चाहिए।

सौ-डेढ़सौ वर्षों के अंदर लिखे गए अंग्रेजी ग्रंथोंमें भी इस विषय की कम सामग्री नहीं मिलती है, लेकिन यह देखकर कितनी खुशी होती है कि पांच हजार साल पहले तकके इन ग्रंथोंमें वे तत्त्व किस खूबसूरतीसे

दिये गए है। प्राकृतिक चिकित्साके प्रचलित रूपके महान् आचार्य जर्मनी-निवासी लूई कूनेने अपनी प्रमुख पुस्तकका नाम 'New Science of Healing' (नवीन चिकित्सा-विज्ञान) रखा था, यदि उन्हें इस सामग्रीका पता होता तो शायद वह उसे Revived Science of Healing (चिकित्सा-विज्ञानका पुनरुद्धार) नाम देते।

लेकिन कूनेने अपनी किताब किताबें पढ़कर नही लिखी थी, सब अनुभव के आधार पर लिखा था। जान पड़ता है, कूनेने बिना अनुभवके कुछ लिखनेकी 'हिमाक़त' नहीं की थी। उनकी जर्मन पुस्तकके पहले संस्करणके (१८९१) अंग्रेजी अनुवादमे 'धूप-स्नान' का जिक्र नही है। उस वक्त तक शायद उन्होंने उसका प्रयोग न किया होगा। पर ज्योंही उन्हें इसके लाभका ज्ञान हुआ वे अपनी पुस्तकके आगामी सस्करणमें धूप-स्नानके महत्व की विस्तारसे चर्चा करनेमे न चूके। जो वस्तुएं पहले उन्हें, अथवा उनकी जानकारीमें औरोंको भी, अज्ञात थी, वे सब उनके लिए, एक प्रकारसे नई ही थी। प्राकृतिक चिकित्सा की वर्तमान सरल विधियोके लिए, और लाखोंपर प्रयोग करके उन्हें सिद्ध कर दिखानेके लिए, हमें उन विदेशी आचार्योंके सामने सिर झुकाना पड़ेगा। आयुर्वेदमे पंचकर्मकी विधियां बतलाई गई हैं, लेकिन वे दुस्साध्य हैं और यही कारण है कि आज हजारोंमें कोई एक वैद्य भी 'पंचकर्म' का आश्रय लेता नहीं दिखाई देता।

लगता है कि मेरी पढ़ाईका अंत आनेवाला नही है। तब, बड़ी पुस्तक लिखनेके लिए न रुककर, छोटी-छोटी पुस्तकोंके रूपमें, जो अबतक अनुभव किया है या जो पढ़ता, अनुभव करता जाऊं, लिखता जाऊं, इस विचारका परिणाम यह पुस्तक है।

प्राकृतिक चिकित्सा सिखानेको शिक्षणालय खोलनेकी चर्चा जब-तब सुनाई देती है, आशा है उन शिक्षणार्थियोंके लिए, तथा दूसरे प्राकृतिक चिकित्साको समझना-समझाना चाहनेवालोंके लिए भी, यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। भारतीय वैद्य-समुदायको भी, इस पुस्तक द्वारा मालूम होगा कि प्राकृतिक चिकित्सा उनके लिए कोई बाहरी वस्तु नहीं है। यदि दवाके

बदले वे इसे अपनाये तो अपने रोगियोंका वे अधिक हित करेंगे

कभी-कभी लोग इस पद्धति पर यह शंका करते पाये जाते हैं कि इससे नीरोग होनेमें बड़ा समय लगता है।

इस गलतफ़हमीका कारण यह है कि अबतक इस पद्धतिका आश्रय लेनेवालोंमें सौमें निन्नानवे व्यक्ति प्रायः पुराने—कभी-कभी तो दस-दस बीस-बीस सालके रोगी होते हैं, हर तरफसे हारे—निराश हुए। इनका सिर्फ दो-तीन महीनेकी प्राकृतिक चिकित्सासे अच्छे हो जाना क्या देरका काम माना जाना चाहिए? कहां दस साल यानी १२० महीने दवा करके भी सिर्फ निराशा ही नहीं, और नये-नये रोगोंका पीछे लग जाना और कहां दो-तीन महीनोंमें ही रोगका समूल नाश हो जाना, इसे देर कहेंगे या जल्दी? साधारण रोगमें या रोगके आरंभमें ही प्राकृतिक उपचार अपनानेसे तो दिनोंमें रोगका निवारण होता है, इसके सैकड़ों उदाहरण सामने हैं।

दूसरी नासमझी है कि प्राकृतिक चिकित्सा संयम बहुत मांगती है—पहले और पीछे भी। जिस चिकित्साकी बुनियाद ही यह है कि संयमके अभावमें ही रोग होते हैं उसके संयमकी मांग करनेमें आश्चर्य क्या है? संसारमें कोई भी अच्छा काम असंयमी होकर सिद्ध नही हो सकता तो अकेला स्वास्थ्य ही उसमें कैसे अपवाद हो सकता है? लेकिन संयम द्वारा अपना स्वास्थ्य सुधारकर बराबर अपनेको स्वस्थ रखनेवालोंने कभी इसकी शिकायत नहीं की कि उन्होंने कुछ खोया है। उन्होंने अपने जीवनमें निरंतर आनंदवृद्धिकी ही बात कही है।

आयुर्वेदाचार्य डाक्टर भास्कर गोविद घाणेकर एम. बी. बी. एस., बी. एस-सी. (हिंदू विश्वविद्यालय—काशी) ने मेरी कब्ज—कारण और निवारण पुस्तककी भांति ही इस पुस्तकके भी संपूर्ण प्रूफ पढकर यत्र-तत्र संशोधन करनेका कष्ट स्वीकार किया, इस कृपाके लिए मैं उनका अति कृतज्ञ हूं।

सुप्रीम कोर्टके माननीय जज श्री बी. पी. सिंह महोदयके प्रति भी

मैं अपनी आंतरिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूं, जिन्होंने प्राकृतिक चिकित्साकी विशेषताओंपर प्रकाश डालनेवाला एक लेख इस पुस्तकके लिए लिख देनेकी कृपा की है।

प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र
जसीडीह (बिहार)
दिवाली सं० २०१४

—महावीरप्रसाद पोद्दार

प्रमाणग्रन्थ

संस्कृत

चरक

सुश्रुत

अष्टांगहृदय

काश्यपसंहिता

भावप्रकाश

भावप्रकाशनिघंटु

शार्ङ्गधर संहिता

अथर्ववेद

हिंदी

आरोग्य साधन	(गांधीजी)
आरोग्य की कुंजी	,,
आत्मकथा	,,
गांव का आरोग्य	(विनोबाजी)
अथर्ववेद चिकित्सा-शास्त्र	(प्रिय रत्न आर्ष)

अंगरेजी

New Science of Healing	Louis Kuhne
Nature Cure	Lindlhar
Bilz Encyclopedia 2 parts	
Royal Road to Health	
New Dictionary of Thoughts	
Good Health	(Ellis Barker)

प्राक्कथन

कुछका कहना है—"प्राकृतिक चिकित्सामें क्या धरा है।" दूसरे इसमें बहुत-कुछ बतलाते हैं। मैं इसी दूसरे मतका अनुयायी हूं। अपने जीर्ण रोगोंके निमित्त अन्य सब प्रणालियोंसे हारकर—कोई लाभ न पाकर—ही मुझे प्राकृतिक चिकित्साकी शरण लेनी पड़ी। देश, विदेशमें प्रचलित अनेक चिकित्सा-प्रणालियोंके अध्ययन और प्रयोगके उपरांत अपने व्यक्तिगत अनुभवोंके आधारपर ही इसके पक्षमें मेरा मत बना है।

मेरा विश्वास है कि मानव-रचित समस्त संस्थाओंकी भांति, कोई भी चिकित्सा-प्रणाली, पूर्ण नहीं कही जा सकती। सत्यके अनेक पहलू होते हैं, हर व्यक्ति सब पहलुओंको नही देखता, शायद देख सकता नहीं। भिन्न-भिन्न नामधारी चिकित्सा-प्रणालियोंके आविष्कारक भी सत्यका अल्पांश ही देख पाये, संपूर्ण नहीं। अतः, किसी एक चिकित्सा-प्रणाली को सर्वांगपूर्ण बताना, और अन्य प्रणालियोंको अनाड़ी कहकर कोसना, सत्यका अपलाप है। हमें उदार रहकर सब पद्धतियोंकी विशेषता समझनेका यत्न करना चाहिए। जीर्ण रोगमें अति उपयोगी पद्धति के, किसी समय उग्र रोगमें नाकामयाब होनेपर, किसी दूसरी व्यवस्थाकी आवश्यकता हो सकती है। हमें किसी एकको एकमात्र या सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा-प्रणाली माननेकी भूल नहीं करनी चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धान्त गिने गिनाये हैं और अत्यंत सरल। हरकोई, थोड़ी समझ रखनेवाला भी, उन्हें आसानीसे समझकर उपयोगमें ला सकता है।

इस चिकित्सामें रोगको शत्रु नहीं माना जाता। आम तौरसे तो लोग रोगके नामसे ही घबराते हैं। पर क्या यह सत्य नहीं है कि बहुत बार अशुभ-के साथ शुभ रहता है? बीमारी अपने साथ पीड़ा—तकलीफ लाती है जरूर,

पर इसीके साथ वह हमारे लिए यह चेतावनी भी तो लाती है कि तुम्हारे शरीरकी भीतरी व्यवस्था ठीक—प्रकृतिके अनुकूल नहीं चल रही है। वह एक सजग प्रहरीका-सा कार्य करती है। रोग प्रकृतिके साधारण नियमोंके उल्लंघनकी एक सूचना मात्र है। प्रकृति न्याय-परायण है और इस प्रकार निष्ठुर भी। उसके नियम भंग करके दंड भोगना अनिवार्य है। उसकी दी हुई हल्की चेतावनियोंपर ध्यान देकर, यानी अपनी खान-पानकी आदतोंमें सुधार करके हम उसके कठोर दण्ड-प्रहारसे बच सकते हैं। प्राकृतिक दर्शनकी दृष्टिसे रोग शरीरमें संचित दोषको दूर करके उसे पुनः स्वस्थ करनेका एक प्रयत्न मात्र है। रोगका साधारण आक्रमण तो प्रकृतिकी अप्रकट कृपा ही मानी जानी चाहिए। प्रत्येक मनुष्य कुछ शारीरिक और मानसिक विशेषताएं लिये हुए जन्मता है। उनके सदुपयोगका फल अच्छा और दुरुपयोगका फल प्रायः भयानक होता है।

अंग्रेजी में कहा गया है, We are what we eat—हम भोजन से ही बने हैं। यह ध्रुव सिद्धांत है कि यदि हम उचित प्रकारका भोजन, उचित मात्रामें और उचित मेलमें (किस चीजके साथ क्या चीज खानी चाहिए, इसका विवेक रखकर) खायं तो हमारा शरीर, और परिणामस्वरूप हमारा मन भी, स्वस्थ और सबल रहेगा। हमारी खुराकमेंसे शरीर के लिए आवश्यक तत्त्वोंके ग्रहण कर लिये जानेपर बाकी फुजला शरीरसे नित्य ठीक समयपर खारिज न होनेपर अंदर-ही-अंदर सड़ता है और हमारा शरीर एक मल-कुंड बन जाता है और इसके परिणामस्वरूप मनुष्यको अनेक रोग होते हैं। दूसरे शब्दों में, हमारे अधिकांश रोगोंका कारण कब्ज है। उससे बचना चाहिए। कब्ज और मंदाग्नि दोनों एक ही चीज है—एक सिक्केकी दो पीठें। कब्ज सभ्यताकी देन है, इस कथनमें कोई अतिशयोक्ति नहीं जान पड़ती। इस युगमें हम अपनी खुराक को बहुत मांज घिस-छील कर, उसका सार-सार खाते हैं। आटेमेंसे चोकड़, चावलमेंसे कण और लाल-पीली पर्त, तथा तरकारियोंमेंसे छिलके निकाल फेंकते हैं, भातमें-से मांड़ पसा दिया जाता है, तरकारियोंको उबालकर उनका पानी फेंक दिया जाता

है। इस प्रकार उनके अनेक 'विटामिन' यानी सत्त्वांश नष्ट करके, उनका मौलिक स्वाद खोनेके बाद, तरह-तरहके मसाले डालकर उन्हें स्वादिष्ट बनानेकी कोशिश की जाती है। वैसे निस्सत्त्व भोजनका भी, हम न परिमाण-का ध्यान रखते, न मेलका। हम अपनी पाचन-शक्तिपर उसकी क्षमतासे कहीं अधिक भार लाद देते हैं। हमारी बहुत-सी खुराक बिना काम आये, बिना पचे—बिना अंग लगे—मलके रूपमें शरीरसे बाहर निकलती है। भोजन द्वारा शारीरिक और मानसिक शक्तिका आधार उसकी मिकदार नहीं, बल्कि खुराकका अंग लगना है। पाचन-शक्तिपर बेजा बोझ पड़ जाने-के कारण हमारी आंतें ठीक समयपर मलको बाहर नहीं निकाल पातीं। इस प्रकार एक दुष्चक्रकी सृष्टि हो जाती है। अपचसे कब्ज और कब्जसे अपच हो जाता है।

पाचन-शक्तिको स्वाभाविक अवस्थामें लानेमे हमें प्राकृतिक उप-चारोंसे अनुपम सहायता मिल सकती है। उनसे लाभ उठानेके बाद हमें अपने शरीरकी आवश्यकता समझकर उसे इतना ही, और इस प्रकार-का भोजन देना चाहिए, जो आसानीसे पचकर उसका रस बननेके बाद बचा हुआ अंश ठीक समयपर मलके रूपमें निकल जाय। हमारा स्वास्थ्य आंतों, गुरदों, फेफड़ों और त्वचाके छिद्रों द्वारा मल-निष्कासनका कार्य समुचित होनेपर ही बहुत-कुछ निर्भर है। इसके लिए हमें लंबी सांस लेनेका अभ्यास करना चाहिए, जिससे फेफड़े मजबूत हों। गुरदोंसे ठीक काम करानेके लिए यथेष्ट मात्रामें स्वच्छ जल पीना चाहिए। त्वचाके छिद्रों-को खुला रखनेके लिए स्वच्छ जलसे नित्य स्नान करना चाहिए और जब-तब भाप-नहान, धूप-नहान और सदा स्वच्छ हवाका सेवन करना चाहिए। पाचन-शक्तिके सुधार और कब्जसे छुटकारा पानेके लिए हमें नियमित कुछ आसन और शारीरिक व्यायामोंका सहारा लेना चाहिए।

स्वस्थ रहनेके लिए मनुष्यको शारीरिक और मानसिक श्रमका सामंजस्य रखना आवश्यक है। मानसिक श्रम अधिक करनेवालोंको शारी-रिक श्रम करके उसका संतुलन करना चाहिए।

स्वास्थ्यके लिए स्थूल शारीरिक क्रियाओंका ध्यान रखनेके साथ-साथ आरोग्याभिलाषीके लिए काम, क्रोधादि मानसिक विकारोंके संयम-का अभ्यास भी कम ज़रूरी नही है।

भोजनका प्रकार और उसकी मात्रा व्यक्तिकी आदतोंपर, उसके रहन-सहनके तरीकोपर, उसके श्रमके अनुपातपर और उसके ढांचेपर निर्भर करती है। इस दृष्टिसे हरेकको अपना पथ-प्रदर्शक स्वय बनना चाहिए। यह कथन बहुत सत्य है कि एक आदमी ४० सालकी उम्रमे अपना चिकित्सक आप बन जाता है अथवा मूर्ख बना रहता है। प्रौढ़ावस्थामे पहुंचते-पहुंचते मनुष्यको यह ज्ञान हो जाना चाहिए कि कैसे आहार-विहार द्वारा वह अपनेको स्वस्थ बनाये रख सकता है।

कहते है, चीनमे लोग स्वस्थ रहनेके लिए, यानी रोग को दूर रखने-के लिए चिकित्सक रखते है। इसमे और रोगी होनेपर चिकित्सककी शरणमें जानेमे बड़ा फर्क है। हमारे देशमे भी ऐसी संस्थाओंकी बड़ी आवश्यकता है जो लोगोंको तदुरुस्त रहना सिखावें—स्वस्थ रहनेके नियम बतलावे। ऐसी संस्थाओपर किया गया व्यय अंतमें सूद, मूलसहित वसूल हो जायगा, क्योकि इनके द्वारा औषधालयों और अस्पतालोंकी संख्या घटाई जा सकेगी यानी इनकी जरूरत ही बहुत कम रह जायगी। अमेरिका के कालिफोर्निया प्रांतमें इस तरह की 'सन डाइट सैनिटोरियम' (Sun Diet Sanatorium) नामकी एक संस्था है, जो वहांवालोंके लिए अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुई है। उसके मार्फत लोगोंमें स्वस्थ रहनेकी विधियोंका प्रचार किया जाता है और अस्वस्थ हो जानेपर उनकी स्वास्थ्य-प्राप्तिका उपाय।

हमें इस देशमें प्राकृतिक चिकित्साकी ऐसी संस्थाओंकी नीव डालनी चाहिए और उन्हें पनपाना चाहिए कि जिनका उद्देश्य बिना दवाके—मिट्टी, पानी, धूप, हवा, शारीरिक व्यायाम तथा मानसिक उपचारों द्वारा—लोगों-को नीरोग रहना और नीरोग करना सिखाना हो।

अंतमे "Prevention is better than cure" अर्थात्—"स्वस्थ रहना बीमार पड़कर अच्छे होनेसे कहीं बेहतर है"—सिद्धांतको सामने रखकर अपना कथन समाप्त करता हूं । आयुर्वेदके प्रसिद्ध ग्रंथ चरक में भी कहा गया है—

"प्राज्ञः प्रागेव तत्कुर्याद्धितं विद्याद्यदात्मनः"—बुद्धिमान व्यक्तिको पहलेसे ही वह कार्य करना चाहिए कि वह स्वस्थ रहे, यानी रोगी न हो।

नई दिल्ली

—बी. पी. सिंह
(जज, सुप्रीम कोर्ट)

विषय-सूची

१.	रोगके कारण	३
२.	रोगकी उत्पत्ति	८
३.	रोगोंकी एकता	१२
४.	रोगोंका उपचार	१५
५.	रोगोपचारमें लंघन	१८
६.	एक 'लंघन' शब्दमें पूरी प्राकृतिक चिकित्सा	२३
७.	जलका उपचार	२४
८.	मिट्टीका उपयोग	३२
९.	धूप-स्नान	३८
१०.	वायु और प्रकाशका उपयोग	४१
११.	रोगोंमें दवाकी अनुपयोगिता	४२
१२.	दवापर अभिमत	४४
१३.	क्या दवा बिल्कुल बेकार है ?	५२
१४.	आराम प्रकृति करती है	५५
१५.	प्राकृतिक चिकित्साकी विशेषता	५९
१६.	नीरोग होनेके संक्षिप्त उपाय	६१
—परिशिष्ट		६२

प्राकृतिक चिकित्सा
क्या व कैसे

प्राकृतिक चिकित्सा
क्या व कैसे

: १ :
रोगके कारण

प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धांतानुसार, बाहरी आघातादिके सिवा, मनुष्य प्रायः आहार-विहारमें भूलें करनेके परिणाम-स्वरूप ही बीमार पड़ता है। इन भूलोंका कारण उसका अज्ञान और इंद्रियोंके विषयोंका लोभ होता है। समझदार समझे जानेवाले मनुष्य भी प्रायः जीभके स्वादमें पड़कर गलत चीजें खाते और कष्ट उठाते पाए जाते हैं।

मनुष्य अज्ञानवश, भाने या न भानेका बहाना बनाकर, जो नहीं खाना चाहिए, वह खाता है, और जो खाना चाहिए, वह नहीं खाता। लेकिन भाना या न भाना खुराकके चुनावकी कोई खास कसौटी नहीं है। किसीका स्वाद बिगड़ा न होनेपर ही यह कसौटी काम दे सकती है। पर बहुत लोग तो अपनी जीभके स्वादको इस तरह बिगाड़ लेते हैं कि उनकी जीभ गलत खानेकी ही मांग करती रहती है।

खुराक-सम्बन्धी मुख्य गलतियां

(१) मनुष्य प्रायः अधिक खाता है। कारण, वह जानता नहीं है कि उसके द्वारा किये जानेवाले श्रमके अथवा उसके ढांचे आदिके हिसाबसे, उसे रोज कितना और क्या-क्या खाना चाहिए। दूसरे,

बहुत लोग इस भ्रममें पड़े रहते हैं कि अधिक खाना अधिक शक्ति देता है, जबकि बात इससे उल्टी ही है। (२) खुराकको पूरा चबाता नहीं है। (३) पदार्थोंके मौलिक रूपमें बहुत हेर-फेर करके—बनानेके नामपर उन्हें बिगाड़कर—खाता है। जैसे, गेहूं अथवा उसके मोटे आटेसे बनी रोटियोंपर संतोष न करके, उसमें घी, चीनी, वगैरह मिलाकर अथवा अनेक तरहके मसालोंका संयोग करके भोजनको मीठा, खट्टा, चटपटा करके खाता है। इसी तरह, दूधके अनेक तत्त्व खोकर, उसका खोआ बनाता और फिर उसके पेड़े, बरफी, आदि मिठाइयां बनाकर खाता है। स्वाद अथवा आंखोंको अच्छा लगनेके बहाने आटेमेंसे चोकड़ छानकर, चावलोंमेंसे कण, भातमेंसे मांड़ और तरकारियोंको उबालकर उनका पानी फेंक देता है। फलों और तरकारियोंके खाने-योग्य छिलके उतार देता है। फलोंके अचार-मुरब्बे बनाकर खाता है। (४) बिना भूखके खाता है। भूख लगे न लगे, वक्त हो जानेपर खा लेता है। भूख कम होनेपर भी खाना नहीं छोड़ता। भूख बढ़ानेको चूरन, चटनीका सहारा लेता है।

खानेके बारेमें मनुष्य इसी तरहकी अनेक भूलें करता है। एक वाक्यमें कहें तो वह **जीनेके लिए न खाकर मानों खानेके लिए ही जीता है।**

खानेकी भांति ही वह पीनेमें भी भूल करता है। चीजों-को बहुत गरम या ठंडा करके पीता है। पानी जैसा, जितना, जब, और जैसे पीना चाहिए, नहीं पीता। बहुत-सी गलत चीजें जैसे, बरफ, सोडा, चाय, काफी वगैरह पीता है।

बीड़ी, सिगरेट, शराब, अफीम, गांजा, भांग, तंबाकू, वगैरह नशोंका सेवन करता है।

सोने-जागने, पेशाब, पाखाने, नहाने-धोने, भोग-विलास, कपड़े-लत्ते आदिके नियमोंमें प्रायः गलतियां करता है। शारीरिक श्रम नहीं करता। साफ हवा और खुले आकाशका सेवन करनेका खयाल नहीं रखता। शरीर और मनको भी, आवश्यकतानुसार विश्राम नहीं देता।

हजारों साल पहले भी आहार-विहार उचित—युक्त—रखनेकी आवश्यकता समझी जाती थी। केवल संसार-यात्राके सुखद रूपसे निर्वाहके लिए ही नहीं, आध्यात्मिक लाभके लिए भी उसकी आवश्यकता मानी जाती थी।

गीतामें कहा गया है—

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।"

—आहार—विहार, खान-पान, सोना-जागना आदि—युक्त—उचित, मर्यादापूर्ण—रखा जाय और सब काम युक्त रूपसे—ठीक-ठीक—किये जायं तो वह योग दुःखनाशक होता है, यानी ऐसी जिंदगी बितानेवालेको कष्ट नही उठाना पड़ता।

उपर्युक्त श्लोकके अर्थमें शंकराचार्यजी कहते हैं—

"तस्माद् योगी नात्मसम्मितादन्नादधिकं न्यूनं वाश्नीयात्।"

इसलिए योगीको अपनी आवश्यकतासे कम या अधिक नहीं खाना चाहिए। वेदोंमें भी कहा है—

यदु ह वा आत्मसम्मितमन्नं तदवतितन्न हिनस्ति।
यदयो हिनस्ति तद्यत् कनीयो भू न तदवति।

—आत्मसम्मित अन्न खानेवालेकी वह अन्न रक्षा करता है, उसे नुकसान नहीं पहुंचाता।

एक जगह स्पष्ट कहा गया है—**'अतिभोजनं रोगमूलम्।'**

—अति (आवश्यकतासे अधिक) भोजन रोगकी जड़ है।

शरीर, प्रधानतः, खानपानसे ही बनता और टिका रहता है। हम जैसा खाते-पीते हैं, उसीके अनुसार हमारा शरीर बनता है। खान-पान सही रखकर शरीरको मृत्यु तक ठीक रखा जा सकता है और बीमार पड़नेपर खान-पानमें परिवर्तन करके उसको सुधारा जा सकता है। बुरे या भले खानपानका असर शरीरके सिवा, मनपर भी पड़ता है।

उपनिषद्में कहा गया है—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः

—शुद्ध आहारसे मन शुद्ध रहता है।

कई हजार साल पहले रचे गये आयुर्वेदके सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ चरकमें इस शरीररूपी इमारतके तीन खंभे कहे गये हैं—

आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य—'त्रय उपस्तम्भा इत्याहारः, स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।'

ब्रह्मचर्यके संबंधमें गलतियां करके भी मनुष्य अनेक रोगोंका शिकार होता है। सुश्रुतमें कहा गया है—

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः
क्षयो ह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वा नियच्छति।

—आहारके अंतिम रूप शुक्रकी (वीर्य) रक्षा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए। इसका क्षय करना बहुत रोगोंका कारण होता है, यहांतक कि मौतके पास पहुंचा देता है।

वीर्यको मनुष्यकी जीवनीशक्ति कहा है—**'शुक्रायत्तं बलं पुंसां।'**

इस शक्तिको हस्तमैथुन, अति भोगविलास अथवा भोगके स्मरण द्वारा नाश कर देनेसे मनुष्यके शरीरमें रोग-प्रतिषेधक शक्ति

कम होकर उसे भांति-भांतिकी बीमारियां सताती हैं। आज नवयुवकोंमें क्षय (टी० बी०) की वृद्धिका एक बड़ा कारण धातुक्षय माना जाता है।

आयुर्वेदमें रोगोंके तीन कारण कहे गये हैं—विषयोंका अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग। मर्यादासे अधिक सेवन 'अतियोग' है, बिल्कुल न सेवन 'अयोग' और गलतरूप से सेवन 'मिथ्यायोग' है। पांचों इंद्रियोंके, रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श, इन पांचों विषयोंके सेवनकी गलतियोंके कारण ही मनुष्य रोगी होता है।

कुछ रोग संसर्गज— छूतसे होने वाले—भी होते हैं। पर यह छूत भी प्रायः उन्हींको लगती है, जिनके शरीरमें उसके ग्रहण करनेका माद्दा होता है। जैसे सूखा घास पानेपर ही उसे आग पकड़ सकती है, दोषरहित शरीरको छूतका डर नहीं रहता।

: २ :

रोगकी उत्पत्ति

मनुष्य जो खाता-पीता है वह उसके पेटमें और वहांसे आंतों-में जाकर पचता है[1], उसका रस बनता है। वही रस आंतों द्वारा खिचकर उससे रक्त—खून बनता है। रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा (चरबी) और मज्जासे वीर्य बनता है—

"रसाद् रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा, मज्ज्ञः शुक्रस्य संभवः।"

इस प्रकार हमारे शरीरका अंग-प्रत्यंग भोजनसे ही बना है।

आंतोंके खुराकमेंसे रस ले चुकनेपर अनावश्यक भाग मल-मूत्रके रूपमें शरीरसे बाहर निकल जाता है। नित्य बाहर निकलनेवाले भागमें शरीरके भीतरी स्रोतोंमें—नाड़ियोंमें मौजूद अनावश्यक पदार्थ भी कुछ मात्रामें शामिल रहते हैं। आंतें रसको चूसनेके सिवा रक्तमें विद्यमान गंदगीको निकालनेका साधन भी हैं। जीवित प्राणीके अंदर यह क्रिया निरंतर—क्षणभर भी रुके बिना—होती रहती है। इसका बंद होना ही मरना है। इस क्रियामें बाधा पड़ना ही रोग की उत्पत्तिका कारण होता है।

हमारे शरीरके भीतर छोटी-छोटी अनगिनत नाड़ियां—

---

१. इस संबंध में लेखककी 'कब्ज—कारण और निवारण' पुस्तक में विस्तारपूर्वक बतलाया गया है। प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; दाम : एक रुपया।

नालियां हैं, जिनके द्वारा रक्त सारे शरीरमें चक्कर काटता हुआ शरीरका पोषण करता रहता है और उन नाड़ियोंमें एकत्र हुए साधारण दोषोंको अपने साथ लाकर श्वास पसीने तथा अन्य मार्गोंसे निकाल देता है। हमारे शरीरसे दोष निकलनेके चार प्रधान साधन हैं—पाखाना, पेशाब, पसीना और सांस। इन चारों क्रियाओंके ठीक चलनेतक मनुष्य प्रायः रोगी नहीं होता। पर इनमेंसे एकके भी अव्यवस्थित होनेपर हम बीमार हो जाते हैं।

अव्यवस्थाका कारण

आहार गलत होनेपर उसका रस अच्छा नहीं बनता, फिर रक्त अच्छा कैसे हो सकता है? रक्त खराब होनेपर उससे बननेवाले शरीरके दूसरे धातु भी ठीक नहीं बन सकते। रक्तमें मलिनता होनेके कारण वह स्वाभाविक गतिसे शरीरमें प्रवाहित नहीं हो पाता, इससे शरीरमें शिथिलता आती है। जैसे घड़ीका कोई पुर्जा बिगड़ जानेपर पूरी घड़ीकी चालमें फर्क पड़ जाता है, वैसे ही शरीरकी किसी एक क्रियाके अव्यवस्थित होनेपर सारे शरीरमें खराबी आना स्वाभाविक है। यों तो नाड़ियोंमें एकत्र साधारण दोषको नित्य बाहर निकालनेका कार्य अपने-आप होता रहता है, और किसी कारणसे विशेष दोष होनेपर उसे निकाल देनेका प्रयत्न भी शरीर करता है। उसके भीतर यह खूबी मौजूद है। शरीरके उसी स्वाभाविक प्रयत्नका रूप होता है, बुखार, दस्त, जुकाम, फोड़े वगैरह, जिन्हें हम रोगके नामसे पहचानते हैं। संस्कृतमें रोग शब्द 'रुज्' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'पीड़ा' है। शरीरके उस प्रयत्नमें पीड़ा होनेके कारण ही उसे रोग कहा जाता है। यदि दोष प्रबल न हुआ और शरीरकी जीवनीशक्ति—भीतरी शक्ति (Vitality) निर्बल न हुई या किसी तेज

दवासे उसे दबाया—कमजोर न कर दिया गया, तो हमारी जीवनीशक्ति अपने-आप शरीरको नीरोग कर ले जाती है। सबका नित्यका यह अनुभव है कि शरीरमें जबतब कुछ तकलीफ होनेपर वह अपने-आप ही ठीक होती रहती है।

पर आहार-विहारमें लगातार गलतियोंके फलस्वरूप मनुष्यके शरीरमें दोष इस परिमाणमें संचित हो जाते हैं कि वे अपने-आप निकल नहीं पाते। दोषोंके बढ़नेसे शरीरकी अनेक क्रियाएं मंद हो जाती हैं; खासकर पाचनशक्ति। खाया हुआ पचता नहीं, भूख कम हो जाती है, शौच साफ नहीं होता, कब्ज हो जाता है, नींद ठीक नहीं आती, जिससे शरीर को आराम नही मिलता।

जीवनी-शक्ति प्रबल रहनेपर शरीरमें संचित दोष सरदी, गरमीकी तीव्रतासे या अन्य किसी आकस्मिक कारणसे प्रकुपित होकर उग्र रूपमें प्रकट होते हैं। प्राकृतिक चिकित्साके महान् आचार्य लूई कूने ने उस संचित दोषको 'विजातीय द्रव्य' (foreign matter) के नामसे अभिहित किया है और उसीको रोगोत्पत्तिका मूल कारण माना है।

चरकमें रोगोत्पत्तिके संबंधमें कहा है—

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम्।

—सभी रोगोंका कारण कुपित (fermented) मल—दोष (foreign matter) ही है। और उनके प्रकोपका कारण विविध अहित—आहार-विहारका सेवन है।

और भी कहा है—

तत्तद्वृद्धिकराहारविहारातिनिषेवणात्
दोष-धातु-मलानां हि वृद्धिरुक्ता भिषग्वरैः।

—श्रेष्ठ चिकित्सक दोष बढ़ानेवाले आहार-विहारके अति निषेवण यानी उसमें ज्यादती करनेसे—मर्यादा छोड़ देनेसे ही दोष, धातु और मलकी वृद्धि मानते हैं।

सुश्रुतकार कहते हैं—

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम्
यत्र सङ्गः रववैगुण्याद् व्याधिस्तत्रोपजायते।

—कुपित हुए दोष (fermented foreign matter) रक्तके मार्फत शरीरमें चक्कर लगाते समय स्रोत-वैगुण्य यानी रसवहा और रक्तवहा नाड़ियोंमें रुकावट आ जानेके कारण, जहां रुक जाते हैं, वहीं व्याधि पैदा होती है। चरकमें कहा है—

'येनाहारविहारेण रोगाणामुद्भवो भवेत्'

—आहार-विहारके कारण रोग पैदा होते हैं।

साधारण दृष्टिसे देखनेपर पाठकोंको इस वचनमें कुछ शंका हो सकती है कि जिस आहार-विहारके कारण हम जीते हैं वही हमारे दुःखों—रोगोंका कारण कैसे हो सकता है?—रोगोंका कारण तो इससे भिन्न होना चाहिए। हमको जिलानेवाली वस्तु ही मारनेवाली भी सिद्ध हो, यह कैसा न्याय है? पर क्या यह सही नहीं है कि जो ईश्वर हमें पैदा करता है वही हमें मारता भी है? बच्चेको पुचकारनेवाली माता ही शरारत—गलती करनेपर उसे पीटती भी है। सदुपयोगसे लाभ, पर दुरुपयोगसे बहुत बड़ी हानि करनेवाली संसारमें बहुत वस्तुएं हैं। कहा है, 'अन्न तारे (जिलाए) अन्न मारे,' यदि उसका उचित रूपमें—मर्यादित रूपमें सेवन किया जाय, तो वह हमें स्वस्थ रखेगा, अन्यथा हानि पहुंचायेगा।

आहारकी भांति ही विहार—यानी शरीर-संबंधी अन्य विषयोंके बारेमें भी समझना चाहिए।

: ३ :

रोगोंकी एकता

जब सब रोगोंका कारण शरीरमें संचित दोष ही है, तब उनका इलाज अलग-अलग तरीकेसे करनेकी क्या जरूरत हैं ? रोगका कारण एक माननेपर उसका उपचार भी एक ही तरहसे होना चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सामें रोगोंकी एकता, अतः उपचार की एकता—**"रोगाद्वैता चिकित्साद्वैता"** (Unity of disease and unity of cure) एक प्रधान सिद्धांत है। आयुर्वेदमें भी कहा है—

त एवापरिसंख्येया भिद्यमाना भवन्ति हि
निदानवेदनावर्णस्थानसंस्थाननामभिः ।

—रोगोंके अनगिनत नाम पड़ गये हैं, सिर्फ यह समझनेके लिए, कि पीड़ा शरीरके किस अंगमें, किस तरहकी है। शरीरके निदान (कारण) से—स्थान-भेदसे, संस्थान भेद से, वेदनाके प्रकारसे, रंगसे, रोगोंके नाम पड़ जाते हैं।

और कहा है—

विकारनामाकुशलो न जिह्मीयात् कदाचन
न हि सर्व विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवास्थितिः ।

—सब रोगोंके नाम न रख पानेमें कोई संकोचकी बात नहीं है; रोगका यही नाम होना चाहिए, ऐसी कोई शर्त नहीं है।

अगर किसी रोगका नाम न रखा जा सके तो चिकित्सकको यह समझकर कि—

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः
अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत् ।

दोषोंके बिना कोई रोग होता ही नहीं, इसलिए दोषके चिह्न देखकर चिकित्सा करनी चाहिए।

रोगोंके विभिन्न नाम तो व्यवहार प्रयोजनके लिए हैं, चिकित्साके लिए नहीं।

उदर-शूल कहनेसे पता चलता है कि दर्द पेटमें है, और कण्ठशूलसे वह गलेमें समझा जायगा।

लेकिन 'शूल' यानी तकलीफ (बे-आरामी—बेचैनी—Disease) तो दोनों में एक ही है। आयुर्वेदमें कहा है—**"रोगत्वं एक विधं रुक् सामान्यात्"**—सब रोगोंमें वेदना (पीड़ा) एक सर्व-सामान्य लक्षण होनेके कारण रोग असंख्य होने पर भी रोगत्व एक है।

वाग्भटने भी कहा है—

"दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेक कारणम्"—सब रोगोंका एकमेव कारण दोष है।

हमें यह समझ लेना चाहिए कि शरीरके विविध अंगोंमें, विविध रूपोंमें, विविध समयमें हुए शूलोंके—रोगोंका कारण एक ही है। दमा और एक्जिमा दोनोंका कारण एक हो सकता है, यह सुननेमें अनोखा-सा लगता है, पर इसके सत्य होनेमें कोई संदेह नहीं है। अक्सर देखा जाता है कि यदि एक व्यक्तिको दमा और बहनेवाला एक्जिमा साथ हुआ तो एक्जिमा बहते रहने पर—यानी उस स्रोतसे शरीरका दोष निकलते रहनेपर—दमा दबा रहता है, पर एक्जिमाका बहना बंद होते ही दमा उभर आता है।

डाक्टरोंने रोगोंकी अनेकताका भ्रम फैलानेमें कमाल किया

है। हर रोगका, यानी भिन्न-भिन्न रोगके भिन्न-भिन्न जीवाणु (Germs) कायम करके दवासे उन्हें मारनेका प्रयत्न किया जाता है। भ्रम यहांतक फैला है कि पांवमें हुई खाजकी एक चिकित्सा होगी और हाथमें हुई खाजकी दूसरी, और सिरमें हुई खाजकी तीसरी!

सब रोगोंकी एकता समझनेके लिए सुश्रुतका निम्नलिखित वाक्य बहुत उपयोगी हो सकता है।

तत्र संचितानां खलु दोषाणां स्तब्धपूर्णकोष्ठता पीतावभासता, मन्दोष्मता चाङ्गानां गौरव-मालस्यं चयकारणविद्वेषश्चेति लिङ्गानि भवन्ति।

—शरीरमें दोष-संचय होनेसे कोठेका भरा-सा यानी आंतोंमें भारीपन लगना, पीला दिखाई देना या त्वचाके वर्णमें कुछ पीला-पन, शरीरमें हरारत, अंगोंका भारीपन, आलस्य बढ़ना और दोषों का संचय करनेवाले कारणोंकी ओर विद्वेष ये लक्षण होते हैं। भला किस रोगमें ये सब अथवा इनमेंसे कुछ लक्षण नहीं मिलते?

आयुर्वेदकी भांति ही रोगोंकी एकताका सिद्धांत यूरोपमें भी, आजसे २५०० साल पहले हिपोक्रेटने—जिसे एलोपैथीवाले औषधिका जनक (Father of Medicine) मानते हैं—अपनी पुस्तकोंमें अनेक स्थानों पर **'प्रकृति अपने आप रोग दूर करती है'** (Nature Cures itself)—यह स्वीकार किया था। **महात्मा गांधीने** भी रोगोंकी एकताके बारेमें कहा है, "विचार करनेसे जान पड़ेगा कि व्याधिको रोकनेका मार्ग सरल है। उसकी जानकारीके लिए किसी ज्ञान-विशेषकी आवश्यकता नहीं है। अल-बत्ता उसपर चलना कठिन है। **सब व्याधियोंका मूल बहुत अंशोंमें एक है, अतः उनका इलाज भी एक ही होना चाहिए।**"

रोगोंकी एकताका सबसे प्रबल प्रमाण तो विभिन्न समझे जानेवाले सब रोगोंका एक ही तरहके उपचारसे अच्छे होना है।

: ४ :

रोगोंका उपचार

मर्यादित आहार-विहार

आहार-विहारके अत्यधिक—मर्यादारहित—सेवनसे ही रोगोंकी उत्पत्ति माननेपर नीरोग रहनेके लिए उनके सेवनकी मात्राका उचित होना अनिवार्य है। और बीमार पड़ जानेपर तो, उस उचित मात्रामें भी, कमी करनेकी जरूरत होती है। इस विषयमें प्रायः सब एकमत हैं कि रोगी होनेपर शरीरको बहुत हल्का, मर्यादित—परिवर्तित आहार-विहार चाहिए। रोगके लक्षणों और अवधि तथा रोगीकी अन्य अनेक बातोंके विचारसे वह मात्रा क्या होनी चाहिए, इस विषयमें मतभेद अवश्य है।

पहले कहा जा चुका है कि प्राकृतिक चिकित्सकोंने, तथा आयुर्वेदने भी, यह माना है कि शरीरमें दोष एकत्र होनेपर ही रोग होते हैं। और, शरीर जैसे अपने भीतरसे मल, मूत्र, श्वास और पसीने द्वारा नित्य गंदगी निकालता है, वैसे ही वह अहित आहारविहारके सेवनसे भीतरी—सूक्ष्म हिस्सोंमें या बड़ी आंतोंमें जमे हुए अतिरिक्त मल—दोषको निकालनेमें भी समर्थ है।

यदि शरीरको, कुछ समयके लिए, रोजकी खुराक पचानेके कामसे, छुट्टी दे दी जाय तो, बिना किसी ऊपरी मददके, वह दोषोंको, अपने-आप निकाल देगा। कभी-कभी शरीर स्वयं ही ज्वर वगैरहके रूपमें खुराक पचानेके कामसे छुट्टी लेनेकी कोशिश करता है। जब हमारी भूख अपने-आप जाती रहती है अथवा कम हो जाती है, उस समय शरीरको खुराक पचानेके कामसे मुक्त

करना आवश्यक है।

प्राकृतिक उपचारमें रोगकी दशामें आमाशयके पाचन-कार्य-के भारको बहुत हल्का कर दिया जाता है, इसलिए कि वह दोष निष्कासनका काम अधिक तेजीसे कर सके। इससे मनुष्यके रोग-मुक्त होनेमें शीघ्रता होती है।

आयुर्वेदमें भी रोगीके 'पथ्य' यानी रोगके समयके आहार-विहारपर बहुत जोर दिया गया है। कहा गया है—

न चाहारसमं किञ्चिद् भैषज्यमुपलभ्यते
शक्यतेप्यन्नमात्रेण नरः कर्तुं निरामयः
भेषजोपपन्नोपि निराहारो न शक्यते
तस्माद् भिषग्भिराहारो महाभैषज्यमुच्यते
विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते
न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि
पथ्यसेविनमारोग्यं गुणेन भजते नरम्
अपथ्यसेविनं क्षिप्रं रोगः समभिमर्दति।

अर्थात्—आहारके समान कोई दवा नहीं है। केवल आहार (food regulation) द्वारा मनुष्यको नीरोग किया जा सकता है। दवा दें और आहारकी परवा न करें तो कुछ न होगा, सिर्फ इसीलिए भिषकोंने आहारको महान् भैषज्य (औषध) कहा है। रोग दवाके बिना पथ्यमात्रसे अच्छा हो सकता है और पथ्य ठीक न रखने पर सैकड़ों दवाएं भी कुछ नहीं कर सकतीं। पथ्यपर चलनेवाले नीरोग रहते हैं और अपथ्यसेवीको रोग जल्दी पछाड़ता है।

और भी कहा है—

यद्यपथ्यं किमोषध्याः यदि पथ्यं किमौषधैः

पथ्येसति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणम्
पथ्ये असति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणम् ।

—यदि अपथ्य हो—आहार-विहार गलत हो तो दवासे क्या होना है, और पथ्य हो तो दवाकी दरकार क्या है ? तब रोग होगा ही क्यों ?

ऊपरके श्लोकोंमें हल्की खुराक द्वारा पाचनशक्तिका भार हटनेपर स्वयं प्रकृति द्वारा रोगमुक्त होनेके सिद्धांतपर ध्यान रखकर ही पथ्यपर जोर दिया गया है।

आम तौरसे 'पथ्य' शब्दसे मुख्यतः 'आहार' समझा जाता है, पर उपर्युक्त श्लोकोंमें आहार-विहार दोनों लिया गया जान पड़ता है।

: ५ :

रोगोपचारमें लंघन

थोड़ी अवधिवाली और उग्र दशा प्राप्त व्याधिमें तो निरापद मार्ग लंघन ही समझा गया है। विदेशके अनेक प्राकृतिक चिकित्सकोंने तो उग्र या जीर्ण, हर रोगके लिए, लंघनका सहारा लेकर लाखों कठिनतम रोगोंके रोगियोंको रोगमुक्त कर दिखाया। लंघन भी थोड़े दिनोंके नहीं, दो-दो महीने तकके लंघन सिर्फ जलके सहारे करा दिये। उन्होंने यह सिद्ध कर बताया कि प्राणीको आराम तो उसकी जीवनी-शक्ति ही करती है, जरूरत उसे मौका देनेकी है।

आयुर्वेद भी इस सिद्धांतको कुछ अंशोंमें मानता जान पड़ता है। ज्वरमें प्रायः लंघनका विधान किया गया है। रोगीकी उग्र दशामें शरीरके भीतर या बाहर प्रायः ज्वर रहता है। ज्वरको रोगोंका राजा और रोग शब्दका पर्याय माना गया है। व्याकरणमें 'ज्वर रोगे' कहा गया है। इस दृष्टिसे आयुर्वेद शास्त्रोंमें ज्वरमें विहित लंघनको रोगकी दूसरी दशाओंमें भी लागू किया जा सकता है। देखना सिर्फ यह होगा कि वह कहांतक उपयोगी होता है। वैसा करनेको कहीं लिखा है या नहीं, यह देखते रहनेवाले आगे नहीं बढ़ सकते।

आयुर्वेदमें ही कहा गया है—

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्।

—औषध (उपचार) वह ठीक है, जिससे आरोग्य प्राप्त हो और

चिकित्सक श्रेष्ठ वह है जो रोगोंसे मुक्त करे।

सब दृष्टियोंसे विभिन्न रोगों—रोग-लक्षणोंपर लंघनका प्रयोग करोड़ोंपर लाभकारी सिद्ध हुआ है।

ज्वरमें लंघनके संबंधमें आत्रेय ऋषिका कहना है—

ज्वरादौ लंघनं कुर्यात्—ज्वरके आदिमें लंघन करना चाहिए। 'आदिमें' इसलिए कहा गया होगा कि रोग आरंभमें प्रबल—उग्र होता है। उस दशामें लंघन करानेसे रोग बढ़ता नहीं।

चक्रदत्त कहते हैं—

तरुणं तु ज्वरं पूर्वं लङ्घनेन क्षयं नयेत्
आमदोषमलिङ्गं वा लङ्घयेत्तं यथाविधम्।

—नये ज्वरको लंघनसे दूर करना चाहिए। और आम दोष यानी पाचन-विकार-संबंधी अथवा जिसके कारणका पता न चले वैसे सब ज्वरोंमें भी बाकायदा लंघन ही कराना चाहिए।

चरकमें कहा है—

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामोमार्गान्पिधापयन्
विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लङ्घनमाचरेत्।

—आमाशयमें (छोटी और बड़ी आंतोंमें) स्थित दोष जठराग्निको—पाचन-शक्तिको मंद कर देता है, इसके कारण बिना पची खुराकका अशुद्ध (खराब) रस रसवहा और रक्तवहा नाड़ियोंमें पहुंचकर उनके मार्गमें रुकावट पैदा करके ज्वर लाता है। इसलिए जठराग्निको प्रदीप्त करने, आम[1] सहित

---

[1] **ऊष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम्**
दुष्टमामाशयगतं रस सामं प्रचक्षते।

जठराग्निके कमजोर होनेके कारण बिना पची हुई, वायु इत्यादि दोषोंके मिलनेसे बिगड़ी हुई, आमाशयमें विद्यमान रसकी पहली धातुको 'आम' कहते हैं।

दोषोंको पचाने और स्रोतोंकी रुकावटको दूर करनेके लिए लंघन करना जरूरी है।

दूसरोंने भी ज्वरका कारण बतलाते हुए कहा है—

मिथ्याऽहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्नि ज्वरदाः स्यू रसानुगाः।

—अयोग्य आहारविहारके कारण दोष आमाशयमें आश्रय लेकर कोठेकी अग्निकी उष्णताको बाहर निकालकर ज्वर पैदा करते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सामें तो सभी रोगोंका यही कारण माना जाता है।

ऊपर चरकके 'आमाशयस्थो', श्लोकमें आए हुए ज्वर शब्दको यदि हम 'ज्वर रोगे' के हिसाबसे रोग मात्रका पर्याय मान लें तो प्राकृतिक चिकित्सा और आयुर्वेदका संपूर्ण मेल बैठता है। प्राकृतिक चिकित्साकी बुनियाद यही है। इस बुनियादको पकड़ लेनेके बाद किसी रोगको दूर करनेमें कोई कठिनाई नहीं रह जाती।

चरकने लंघनकी तारीफमें और भी कहा है—

लंघनेन हि अग्नि मारुत वृद्ध्या, वातातप—
परीतमिवाल्पमुदकमल्प दोषः प्रशोषमापद्यते।

—लंघनसे अग्नि और वायुकी वृद्धि होकर अल्पदोष इस प्रकार सूख जाते हैं जैसे हवा और धूपवाली जगहपर पड़ा हुआ थोड़ा पानी सूख जाता है।

महर्षि वाग्भट कहते हैं—

दोषेण भस्मनेवाग्नौ छन्नेऽन्नं न विपच्यते
तस्मादादोषपचनाज्ज्वरितानुपवासयेत्।

—जैसे राखसे ढकी हुई आगसे खाना नहीं पकता, वैसे ही

आमसे ढकी हुई जठराग्नि खुराकको नहीं पचा पाती। इसलिए दोषोंके पकनेतक यानी आम खत्म होनेतक—शरीरके निराम होन तक—ज्वरवाले रोगीको उपवास कराना चाहिए।

लंघनैः क्षयिते दोषे दीप्तेऽग्नौ लाघवे सति
स्वास्थ्यं क्षुत्तृड् रुचिः, पक्तिर्बलमोजश्च जायते।

उपवाससे जब (कुपित) दोष दूर हो जाता है, जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है, शरीर हल्का हो जाता है—यानी स्फूर्ति आ जाती है, तब आरोग्य, भूख, प्यास, भोजनमें रुचि, 'आम' का पचन, बल और ओज पैदा होता है।

आयुर्वेदमें उपर्युक्त दोनों श्लोक ज्वरके प्रसंगमें कहे गये हैं, लेकिन इनमें उपवासद्वारा कहा गया लाभ और उसकी व्याप्ति इतनी विशद है कि वह ज्वरके सिवा रोगके दूसरे लक्षणोंमें भी प्रत्यक्ष लागू होता है।

जठराग्निकी मंदता और 'आम' की उपस्थिति तो, बहुत कम ही रोग ऐसे होंगे कि जिनमें न पाई जाय। उपवासको "दोषाणां समुदीर्णानां पाचनाय शमनाय च"—उभरे हुए दोषोंके पाचन और शमनके लिए अत्यंत लाभकारी बतलाया गया है।

इसके सिवा उपवास, या कहिए लंघनसे जठराग्निके प्रबल होनेसे जीवन-शक्ति सतेज होकर—शरीरमें उभार लाकर दबे हुए दोषोंको बाहर निकालती है। बहुतेरे रोगियोंमें देखा जाता है कि लंघन शुरू करनेपर पाखानेमें 'आंव' आने आरंभ होते हैं और ज्यों-ज्यों 'आंव' निकलते जाते हैं, उनका रोग कम होता जाता है। 'आंव' की समाप्ति पर रोगी रोगमुक्त हो जाते हैं।

आयुर्वेदमें लंबे लंघन करानेका विधान भी है—

ज्ञात्वा दोषबलं धीमान् लङ्घनानि समाचरेत्
दोषे सति न दोषाय लङ्घनानि बहून्यपि।

—बुद्धिमानको चाहिए कि शरीरमें दोषकी मात्राके अनुसार लंघन कराए। दोष रहनेपर अधिक लंघन करना भी दूषित न माना जायगा।

भिन्न-भिन्न प्राकृतिक चिकित्सकोंके, लाखों पर किये गए, अनुभवों तथा इस पुस्तक-लेखकके अपने हजारों रोगियोंके अनुभव तथा आयुर्वेद-शास्त्रसे यह सिद्ध होता है कि प्रायः सभी प्रकारके रोग-लक्षणोंके नाशमें समझदारीसे किया, कराया गया लंघन रामबाणका काम करता है।

: ६ :

एक 'लंघन' शब्दमें पूरी प्राकृतिक चिकित्सा

ऊपर 'लंघन' शब्द उपवासके अर्थमें बरता गया है, लेकिन आयुर्वेदमें 'लंघन' शब्दकी बड़ी व्यापक परिभाषा पाई जाती है।

आयुर्वेदके सर्वमान्य ग्रंथ सुश्रुतमें लंघनकी परिभाषामें कहा गया है—

शरीरलाघवकरं यद्द्रव्यं कर्म वा पुनः तल्लङ्घनमिति ज्ञेयं।

—जिस कर्म—प्रकार—वा द्रव्यसे शरीर लघु—हल्का हो वह लंघन है।

चरकमें लंघनके दस प्रकार कहे गये हैं—

चतुष्प्रकारा संशुद्धिः पिपासा, मारुतातपौ,
पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लङ्घनम्।

चार तरहका संशोधन—(१) वमन (कै कराना) (२) विरेचन (ऊपरसे कोई चीज पिलाकर दस्त लाना) (३) बस्ति (एनिमा) (४) स्वेदन (भाप-नहान)

दूसरे छः प्रकार—(१) पिपासा (२) मारुत (वायु-सेवन), (३) आतप (धूप-स्नान), (४) पाचन द्रव्य (फल-तरकारी वगैरहका सेवन), (५) उपवास (अनशन), (६) व्यायाम (कसरत)

इन दसोंमेंसे अधिकांश उपाय प्राकृतिक चिकित्साके उपचारोंमें लिये गए हैं।

: ७ :

जलका उपचार

शुरू-शुरूमें विदेशमें प्राकृतिक चिकित्सा 'जल-चिकित्सा' के रूपमें फलने-फूलनेके कारण उसका नाम हाइड्रोपैथी या हाइड्रोथेरेपी (Hydropathy, Hydrotherapy) पड़ा था। फिर उसमें दूसरी प्राकृतिक वस्तुएं—मिट्टी, धूप, हवा आदि भी जुड़ती जानेसे वह प्राकृतिक चिकित्सा (Naturopathy) कहलाई। विदेशमें प्रिसनीज़, फादर नीप, जस्ट, लूई कूने आदि इसके अनेक महान् आचार्य हुए हैं, जिन्होंने स्वयं अपनी बीमारीके लिए हर तरफसे हार चुकनेपर अपनी आविष्कृत विधियोंसे स्वयं नीरोग होनेके बाद अपनी जिंदगीमें अन्य लाखोंको इन तरीकोंसे लाभ पहुंचाया था। वहां जिन आचार्योंको जिन विधियोंसे, खुदको या दूसरोंपर प्रयोग करके अधिक लाभ मिला था उन्होंने उन तरीकोंपर जोर दिया। किसीने धूपपर, किसीने मिट्टीपर, किसीने जलपर, किसीने उपवासपर। लेकिन जलकी महत्तापर प्रायः सब एकमत थे। कुछ विभिन्न विधियोंसे ही सही, जलका प्रयोग सब करते थे। भारतमें भी यह चिकित्सा 'जल-चिकित्सा' के नामसे ही विख्यात हुई। जल हमारे शरीरके बाहरी मल—दोषको साफ करता है, वैसे ही, विधिपूर्वक प्रयोग करनेसे, हमारे भीतर संचित एकत्र दोषको बाहर निकालनेकी भी उसमें अद्भुत शक्ति है। मनुष्य-शरीरमें ८० प्रतिशत तो जल ही है, अतः जलसे रोगोंका निवारण होना

स्वाभाविक है।

बहुतोंका खयाल है कि 'जल-चिकित्सा' नई चीज है। जर्मनी-के जल-चिकित्साके महान् आचार्य लूई कूनेने तो इसीलिए अपनी विधियोंको 'नवीन चिकित्सा विज्ञान' (New Science of Healing) नाम दिया था। यह सही है कि कूनेकी जल-चिकित्साके अत्यंत सरल तरीके, जिन्हें हरएक घर बैठे कर सकता है, और उनके समर्थनका प्रकार, अनोखा है। रोगोंकी एकता अतः उपचारकी एकताका सिद्धांत (Unity of disease and unity of cure) भी उन्होंने जितनी स्पष्टतासे दुनियाके सामने रखा, और उसे सिद्ध भी कर दिखाया, वैसा दूसरे कम कर पाए। इस दृष्टिसे उसे नई चिकित्सा कह सकते हैं। पर भारतमें भी बहुत प्राचीन समयसे जलका महत्त्व और चिकित्साके रूपमें उसका व्यवहार होता था, यह आयुर्वेदके नीचे दिये गए अवतरणोंसे सिद्ध होता है।

पित्त-ज्वरमें रोगीकी नाभिपर ठंडे पानीकी धार गिराने-का जिक्र है।—

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्र-
कांस्यादि-पात्रे निहिते च नाभौ
शीताम्बु-धारा बहुला पतन्ती
निहन्ति दाहं त्वरितं ज्वरञ्च।

—पित्त-ज्वरके रोगीको चित लिटाकर उसके पेड़ू पर तांबे या कांसेका एक गहरा बर्तन रखें और उसमें ऊपरसे ठंडे पानीकी मोटी धार गिरावें। यह क्रिया पित्त-ज्वरको तुरंत शांत करती है।

कफ दूर करनेमें 'जलक्रीड़ा' बतलाई गई है। जलक्रीड़ाका प्रकार न कहकर भी उससे कफ कैसे दूर होता है, यह कहा गया है।

जलक्रीड़ा-जनित शैत्येन अवरुद्धोऽष्मा
पङ्कलिप्तोऽभितः पाकाग्निरिवोग्रो भूत्वा कफं शोषयति।

—जलक्रीड़ाके कारण पैदा हुई ठंडकसे, बाहर निकलती हुई शरीरकी गरमी, अंदर इस प्रकार रुक जाती है, जैसे चूल्हेको चारों ओर कीचड़से (गीली मिट्टीसे) छोप देनेसे उसकी आंच बाहर नहीं निकल पाती। वह गरमी अंदर तेज होकर कफको सोख लेती है—खींच लेती है।

पित्तके उपशय यानी निवारणमें 'यंत्रवारि'—फुहारेके स्नानका जिक्र है।

वायुके उपशयमें **"जलद, रविकर, बस्ति, स्वेद, संमर्दनानि"** इन उपायोंकी चर्चा है। (१) जलद यानी वर्षाका पानी, (२) रविकर (सूर्यकी किरणें), (३) बस्ति (एनिमा), (४) स्वेद (भाप-नहान), (५) संमर्दन (मालिश)।

प्राकृतिक उपचारकी एक क्रियाका, जिसे अंग्रेजीमें 'वेट-शीट-पैक' कहते है, हिंदीमें अनुवाद 'भीगी चादरका बंधन' किया जाता है, पर आयुर्वेदमें उसके लिए गढ़ा-गढ़ाया शब्द 'आर्द्रवस्त्रावगुंठन' मिलता है। यह वेट-शीट-पैकके सिवा और क्या हो सकता है?

कहा गया है—**काञ्जिकार्द्रं पटेनावगुण्ठनं दाहनाशनं** अर्थात् कांजीसे गीले किये हुए वस्त्रसे दाहनाश होता है।

आयुर्वेदमें जलकी अगाध महिमा गाई गई है—

पानीयं, श्रमनाशनं, क्लमहरं, मूर्च्छा, पिपासापहम्
तन्द्राच्छर्दि, विबन्ध, हृद्बलकरं, निद्राहरं, तर्पणम्
हृद्यं, गुप्तरसं, ह्याजीर्णशमकं, नित्यं हितं, शीतलम्
लघ्वच्छं, रसकारणं, निगदितं, पीयूषवज्जीवनम्।

—यानी श्रमकी थकानको दूर करनेवाला, खेदनाशक, बेहोशी

और प्यास मिटानेवाला, आलस्य, कै, मलबंधका नाशक, असमय-की निद्राको दूर करनेवाला, तृप्तिकारक, हृदयके लिए प्रिय, (हितकर) गुप्त रसवाला, अजीर्ण शामक, सदा हितकारी, शीतल, हल्का, रसका कारण रूप और अमृतकी भांति जीवनदाता है।

चरकमें विष-चिकित्सा-प्रकरण में '**अवगाहन रक्त मोक्षणाः**' कहा गया है। इसमें रोगीको जलके अंदर बिठानेकी बात है। ऐंद्र-जालिक कामरत्नमें तो साफ कहा है—**अत्यन्त विषरोगार्तान् जल मध्ये विनिक्षेपेत्**'—अत्यंत विषपीड़ितको पानीमें डाल दो। (नदी-में इस तरह डालना चाहिए कि नाक-मुंह पानीके ऊपर रहें।)

जलका महत्त्व चिकित्साके रूपमें आयुर्वेदसे भी अति प्राचीन अर्थात् संसारमें पाए जानेवाले सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ वेदोंमें भी पाया जाता है। जलके सिवा, सूर्य-स्नान, वायु-स्नान, मिट्टीका लाभ भी वेदोंमें—विशेषतः अथर्व वेदमें—बतलाया गया है।

वेदमें जलकी महिमा

अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह
ता नो हिन्वन्त्यध्वरम्।

—सूर्य किरणोंसे शुद्ध हुआ जल हमारा कल्याण करे।

सूर्य किरणोंसे संपर्कित बहता जल पीने, नहाने, धोने और जल-चिकित्साके लिए भी, अधिक लाभदायक समझा जाता है।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः,उशतीरिव मातरः।

—जो रसोंमें सबसे अधिक कल्याणकारक रस है, उस जल-से, हमें उसी तरह उत्तम सुख मिले, जिस तरह पुत्रको माताके दूधसे पुष्टि मिलती है।

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् ।

—जलमें अमृत है, जलमें औषध है अर्थात् आरोग्यदायक गुण है ।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा सोमने ।

—सृष्टि रचयिता परमात्माने हमसे कहा है कि जलमें सब औषधियां हैं ।

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम ।

—जलसे हमारी चिकित्सा हो और रोगोंसे शरीरका बचाव होकर हम दीर्घायु बनें ।

आप इद्वा भेषजीरापो अमीवचातनीः
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ।

—जल निस्संदेह औषध है, जल रोगनाशक है, जल सब रोगोंकी दवा है । वह जल मुझे क्षेत्रिय (आनुवंशिक—पैतृक hereditary) रोगोंसे मुक्त करे ।

क्षेत्रिय शब्दसे प्रतीत होता है कि जलमें वंश-परंपरासे चले आते रोग तकको दूर करनेका सामर्थ्य माना गया है । तब साधारण रोगकी तो बात ही क्या रही !

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयोऽध्वरीयताम् ।

—जलका सही उपयोग जाननेवालेका वह (जल) माता और बहनकी भांति भला करता है ।

माता और बहनसे अधिक मनुष्यका भला करनेवाला और कौन मिलेगा ?

'अम्बय' शब्द बहते जलका बोधक है ।

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ।

—निर्दोष जल हमारे रोग–दोषको दूर करे। निर्मल–चमकता हुआ जल हमारे शरीरके बाहरी हिस्सेपर लगे दोष—मलको दूर करके, दुष्ट स्वप्न—स्वप्न-दोषको हटा दे, भीतरी मलको—दोषोंको निकाल दे।

प्रायः प्राकृतिक चिकित्सकोंका अनुभव है कि स्वप्न-दोष तथा धातु दौर्बल्यादि विकार जल-चिकित्सासे बहुत जल्द अच्छे होते हैं।

भारतमें जलकी महिमा

भारतमें जलकी महिमा प्राचीन कालसे अवगत होनेसे ही स्नान-क्रिया धर्मके अंदर दाखिल कर दी गई थी। मनुष्यका वह नित्यका आवश्यक कर्त्तव्य माना गया। भारतमें सुबह ब्राह्ममुहूर्तमें नदीके ठंडे पानीमें, खुली हवामें स्नान करनेका रिवाज है। गांवोंमें, और गंगा-किनारेके शहरोंमें भी, लाखों नर-नारी, जाड़ा हो या गरमी, सुबह-ही-सुबह नदीमें गोते लगाते हैं, मल-मलकर नहाते हैं। स्वास्थ्य अथवा किसी दूसरे प्रकारके फायदेके खयालसे यह न करके, नित्यक्रियाके हिसाबसे ही किये जानेपर भी, उन्हें इसका पूरा लाभ तो मिलता ही है। प्रातःकालकी ठंडी हवा, सूर्य किरणोंसे संपर्कित, बहता शीतल जल, कोस-आध-कोस पैदल चलकर जाना-आना, वहां बैठकर घंटे-आध-घंटे पूजा करना, इसमें उन्हें धूप-स्नानका लाभ भी मिल जाता है। धार्मिक वृत्तिके वृद्ध लोग तीर्थोंमें माघ मासके स्नानके लिए पागल रहते हैं। प्रयागका कल्पवास—माघमें एक महीना नित्य त्रिवेणीका स्नान—एक महीनेकी प्राकृतिक चिकित्सा ही है—बिना विधि की ही सही। बहुतेरे अस्वस्थ व्यक्तियों—खासकर स्त्रियोंको देखा जाता है कि महीने दो महीनेके नदी-स्नानके फलस्वरूप उनकी बीमारी जाती रहती है।

भारतके कई प्रांतोंमें, रोगकी कुछ अवस्थाओंमें, जलके प्रयोग सुने जाते हैं। उस दिन एक मित्रने मुझे बतलाया कि उन्होंने राजस्थानमें छोटे बच्चोंको रोग विशेषमें 'तरड़ा' देते देखा है। उसका प्रकार है—बच्चेको उल्टा लिटाकर ऊपरसे मोटी धारसे ठंडा पानी उसके गुदाद्वारके नजदीक कुछ मिनटों तक गिराना। उसमें 'तरड़ तरड़' शब्द होनेके कारण उसका नाम 'तरड़ा' पड़ा जान पड़ता है। कटकर खून निकलनेपर ठंडे पानीमें भिगोकर कपड़ा लपेटनेका तो आम रिवाज है। तलाश करनेसे हिंदुस्तानमें ऐसे अनेक प्रकारोंका पता चल सकता है।

जलके प्रयोगसे दो-चार तरहके रोग आराम होनेकी बात तो लोगोंकी समझमें आती है, लेकिन सिर्फ पानीसे सब तरहके रोग कैसे दूर हो सकते हैं, यह समझमें नहीं आता। इसीलिए पीछे रोगोंकी एकताका सिद्धांत बता आए हैं। जब रोग एक है तो चिकित्सामें अनेकताकी आवश्यकता क्या है?

जल-चिकित्साके महत्त्वके संबंधमें यहां विदेशके अनेक गण्यमान्य डाक्टरों और अन्य महानुभावोंके मत उद्धृत किये जा सकते थे, लेकिन हिंदुस्तानियोंके उनसे अपरिचित होनेके कारण उनका उल्लेख व्यर्थ समझा गया। यहां जल-चिकित्सापर संसार-विख्यात **महात्मा गांधीका** मत देना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। वह कहते हैं—

"बहुत अधिक लोगोंपर प्रयोग करके लूई कूनेने निश्चय किया कि सब तरहके रोगोंमें पानीके दो तीन (कटिस्नान, मेहन-स्नान, वाष्प-स्नान[1]) प्रकारके स्नानोंसे लाभ पहुंचता है। उसकी पुस्तकोंके अनुवाद अनेक भाषाओंमें[2] हो चुके हैं।

---

[1] इन तीनों स्नानों की विस्तृत विधि इस पुस्तक के अंत में परिशिष्ट रूपमें दी गई है।

[2] संसारकी अधिकांश भाषाओंमें इसकी एक करोड़ कापियां बिकनेकी बात कही जाती है।

हिंदुस्तानकी कई भाषाओंमें भी हुए हैं। वह सारी बीमारियोंकी जड़ मेदेकी खराबीको मानता है। मेदेकी खराबीसे ही शरीरके बाहरी हिस्सोंमें फोड़े-फुंसी, सूजन तथा अन्य रोग पैदा होते हैं या वह भीतरकी गरमी बाहर आकर सारे शरीरको गरम कर देती है। जल-चिकित्सापर डा० लूई कूनेके पहलेके एक लेखककी लिखी 'जल-चिकित्सा' नामकी एक बहुत पुरानी पुस्तक है।[1] पर लूई कूनेके पहले किसीने रोगोंकी एकतापर इतना जोर नहीं दिया था और न यही बतलाया था कि सारी बीमारियोंकी जड़ मेदा है। इस बातकी जरूरत नहीं कि हम लूई कूनेके मतको सर्वांशमें सही मान लें, पर इतना निश्चित है कि उसके विचार और उपचार अनेकानेक रोगोंमें ठीक उतरते हैं और सहस्रों उसे आजमा चुके हैं। डर्बनके स्व० मजिस्ट्रेट मि० ट्रीननधनुर्वात रोगसे अपाहिज हो गए थे। वह बहुत डाक्टरोंका इलाज कराके निराश हो चुके थे। किसीकी सलाह पाकर वह लूई कूनेके पास गए। लूई कूनेके इलाजका उनपर बहुत अच्छा असर हुआ। वह चंगे हो गए। उसके बाद बहुत वर्ष डर्बनमें रहे। लोगोंको वह लूई कूनेके उपचारोंकी सलाह दिया करते थे। यह तो जल-चिकित्साकी लोकप्रियताका एक उदाहरण है, पर ऐसे बहुत ज्यादा उदाहरण पाए जाते हैं।"

"हमारा यह शरीर पंच भूत—क्षिति, (पृथ्वी—मिट्टी), जल, पावक (अग्नि-सूर्य), गगन (आकाश), समीरसे (हवा), बना है, इसलिए उसकी चिकित्सा भी इन्हीं पांचोंकी सहायतासे होनी चाहिए।"

---

[1] लिच फील्डके सर जान फ्लेयर (१६४९-१७३४) की 'The history of cold bathing, both ancient & modern' पुस्तककी ओर इशारा जान पड़ता है।

: ८ :

मिट्टीका उपयोग

प्राकृतिक उपचारोंमें मिट्टीका विशेष उपयोग किया जाता है। आयुर्वेद और वेदमेंसे हम मिट्टीकी महिमा प्रकट करनेवाले कुछ वचन पाठकों की जानकारीके लिए नीचे दे रहे हैं।

आयुर्वेदमें मिट्टी

कर्दमो दाह-पित्तार्त्ति-शोथघ्नः शीतलः सरः ।

—पानीमें सानी हुई मिट्टी (कर्दम) ठंड देनेवाली होती है, शौच साफ लाती है, जलन, पित्तकी पीड़ा और सूजनको दूर करती है।

कृष्णमृत् क्षतदाहास्र प्रदरश्लेष्मपित्तनुत् ।

—काली मिट्टी घाव, दाह, रक्तविकार, प्रदर (स्त्री-रोग), कफ तथा पित्तको मिटाती है।

हिता वा स्यात् कृष्णा वल्मीकमृत्तिका । (सुश्रुत)

सर्प-विषके प्रतिकारमें काली और विमौटकी मिट्टीको हितकर बताया है।

वेदमें मिट्टी

यद्वो देवा उपजीका आसिञ्चन धन्वन्युदकम्
तेन देवसुतेनेदं दूषयता विषम् ।

—हे मनुष्यो ? मुंहसे लाई हुई मिट्टी और उसमें अपने मुंहके मिलाए जलसे दीमकें जो विमौट (वल्मीक) बनाती हैं, उस (मिट्टी) देव-रचित (प्राकृतिक) भेषजसे इस विषको —रोगरूपी विषको—नष्ट करो।

उपजीका उद्धरन्ति समुद्रादधि भेषजम् तदात्रावस्य।

—दीमकें समुद्र या जलाशयसे—उसके किनारेसे गीली मिट्टीके रूपमें औषधको ऊपर उभारती हैं। वह बहनेवाले घावकी औषध है।

मिट्टी के परम भक्त **गांधीजी** कहते हैं —

"जीवनकी सादगी बढ़नेके साथ-साथ रोगोंके लिए दवा लेनेकी जबरदस्त अरुचि, जो मुझमें पहलेसे थी, वह बढ़ती गई। किंतु भोजनके परिवर्तनोंके कारण कब्जकी शिकायत दूर न हुई। कूनेके कटि-स्नानके उपचारसे थोड़ा फायदा होनेपर भी जितना चाहिए उतना परिवर्तन नहीं हुआ। एक मित्रने जुस्ट की 'रिटर्न टु नेचर' (कुदरतकी ओर लौटो) नामक पुस्तक मुझे दी। उसमें मैंने मिट्टीके इलाजके बारेमें पढ़ा। उक्त पुस्तकके लेखकने इस बातका जोरोंसे समर्थन किया है कि मेवे और ताजे फल ही मनुष्यकी कुदरती खुराक हैं। मैंने इस समय केवल फलाहारका सहारा तो नहीं लिया, पर मिट्टीका उपचार फौरन शुरू कर दिया। उसका मुझ पर अद्भुत असर हुआ। उपचार यह था— साफ खेतकी लाल या काली मिट्टी लेकर उसमें अंदाजसे ठंडा पानी मिलाकर उसे सानकर और फिर साफ पतले भीगे कपड़ेपर रखकर पेटपर लगाकर ऊपरसे पट्टी बांध लेता। यह पुलटिस रातको सोते समय बांधता और सवेरे या रातको जब नींद खुल जाती तो हटा देता। इससे मेरा कब्ज जाता रहा। इसके बाद मैंने मिट्टीके ये उपचार अपनेपर और अपने अनेक साथियोंपर आजमाये और जैसा मुझे याद है, शायद ही किसीपर निष्फल हुए हों।

"मिट्टी और पानीके उपचारोंके विषयमें मेरी श्रद्धा बहुत

अंशोंमें जैसे आरंभमें थी वैसी ही है। आज भी मर्यादाके अंदर रहकर मिट्टीके उपचार अपने ऊपर तो मैं करता ही हूं और अपने साथियोंको भी मौका पड़नेपर सलाह देता हूं। जीवनमें दो सख्त बीमारियां मैं भोग चुका हूं, तथापि मैं मानता हूं कि मनुष्योंके लिए दवा लेनेकी शायद ही जरूरत होती है। पथ्य और पानी, मिट्टी आदि घरेलू उपचारोंसे हजारमें से ९९९ केस अच्छे हो सकते हैं।

बिच्छू और बर्रेके डंकोंपर मैंने मिट्टीके इलाजको स्वयं आजमाकर देखा है, उसे तत्काल लाभदायक और उपयोगी पाया है। नीचे लिखे उदाहरणोंमें मैंने मिट्टीकी पुलटिसके (जिस तरह ऊपर बताई गई है) उपचारका स्वयं अनुभव किया है—

१. अतिसार (पतले दस्त)
२. सिरदर्द
३. आंखोंका दर्द
४. चोट लगनेसे कहीं सूजन आगई हो तो
५. कब्ज
६. पेटका दर्द
७. पेचिश।

८. १९०४ के पहले फ्रूट-साल्ट लेनेपर ही मेरा पेट साफ रहता था। १९०४ में मिट्टीकी उपयोगिता समझमें आ जानेसे फिर कभी मुझे फ्रूट-साल्ट आदि लेनेकी जरूरत न पड़ी।

९. पेट और सरपर मिट्टी बांधनेसे तेज बुखार घंटे दो घंटेमें हल्का हो जाता है।

१० फोड़े-फुंसी, खुजली और दाद वगैरहपर मिट्टी

बांधनेसे प्रायः बहुत लाभ होता है। बहते फोड़ेपर कम फायदा होता है।

११. जलेपर मिट्टी बांधनेसे जलन कम हो जाती है और सूजन नहीं आती है।

१२. बवासीरपर बांधनेके लिए मिट्टी लाभदायक है।

१३. पाला पड़नेके समय जिसके हाथ पैर सुर्ख हो जाते हैं और सूख जाते हैं, उसपर मिट्टी जरूर फायदा पहुंचाती है।

१४. उस सूजनमें, जिसमें खुजली होती है, पर दर्द नहीं होता, मिट्टी गुणकारी है।

१५. जोड़ोंके दर्दपर मिट्टी लगानेसे फौरन लाभ होता है। मिट्टीके अनेकानेक प्रयोग करनेके बाद मुझे मालूम हुआ है कि घरेलू इलाजके लिए मिट्टी अनमोल वस्तु है।[1]

"इस तरहसे पानी, मिट्टी आदिसे मियादी बुखार-जैसे भयंकर ज्वरवाले रोगियोंको भी आराम हुआ है। इतना ही नहीं, किंतु बादको उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहा। कुनैन आदि दवा खानेवाले मनुष्य नीरोग हुए-से जान पड़नेपर भी दूसरी बीमारियोंके पंजेमें फंसे रहते हैं। मलेरियाके रोगी कुनैनसे आराम होते बताए जाते हैं, पर मेरा खयाल है कि उन्हें मलेरिया-से शायद ही छुटकारा मिलता हो। पर प्राकृतिक उपचारोंसे मलेरियाके रोगीको पूर्ण नीरोग होते मैंने पाया है।

प्लेगके रोगियोंके लिए खोले गये एक शिविरमें, जिसमें हम लोग भी शुश्रूषकका कार्य करते थे, हमें बीमारोंको समय-समयसे ब्रांडी देनेको कहा गया था। स्वयं हमें भी छूतसे बचनेके लिए नर्स थोड़ी ब्रांडी लेनेकी सिफारिश करती

[1] 'गांधीजी-लिखित 'आरोग्य साधन', पृष्ठ ७७-७८।

थी और खुद भी लेती थी । हममें कोई भी न था, जो ब्रांडी लेता । मुझे तो रोगियोंको भी ब्रांडी देनेमें श्रद्धा न थी। डा० गाडफ्रेकी इजाजतसे तीन बीमारोंके, जो ब्रांडी बिना काम चलानेको और मिट्टीके प्रयोग करने देनेको तैयार थे, सिर और छातीपर जहां दर्द था, मैंने मिट्टी रखनेका प्रयोग किया। इन तीनों बीमारोंमें दो बचे, बाकी अन्य सब बीमारोंका देहांत हो गया ।

"कुछही दिनों बाद हमें मालूम हुआ कि उक्त नर्सका भी प्लेग-से देहांत हो गया। उक्त दो बीमारोंके बचने और हम लोगोंके मुक्त रहनेका क्या कारण था, यह कोई नहीं कह सकता; पर मिट्टीके उपचारपर मेरी श्रद्धा, और दवाकी भांति भी शराबके उपयोगके विषयमें मेरी अश्रद्धामें, वृद्धि हुई। मैं जानता हूं कि इस श्रद्धा और अश्रद्धा दोनोंके लिए कोई आधार नहीं है, तथापि मुझपर उस समय जो असर पड़ा, और जो आजतक चला आ रहा है, उसे मिटाया नहीं जा सकता ।

"मेरे जो बच्चे जहाजमें हिंदुस्तान आए—उनमें तीसरा लड़का रामदास भी था। स्टीमरमें खेलते हुए उसका हाथ टूट गया। डाक्टरने हड्डी बिठाकर लकड़ीकी तख्तियां बांध दीं और हाथको रूमालसे गलेसे लटका दिया । स्टीमरके डाक्टरकी सिफारिश थी कि जख्मका किसी डाक्टरसे इलाज कराना चाहिए। पर मेरा यह जमाना तो जोर-शोरसे मिट्टीके प्रयोग-का था। मेरे जिन मुवक्किलोंको मुझमें विश्वास था, उनपर मैं मिट्टी और पानीका प्रयोग करता था। फिर रामदासके लिए दूसरा क्या होता ?

कांपते-कांपते मैंने उसकी पट्टी खोली, जख्म साफ किया

और हाथमें मिट्टीकी पुलटिस लगाकर जैसे पहले बंधा था वैसे बांध दिया। इस प्रकार बराबर मैं स्वयं जख्म साफ करता और मिट्टी बांधता। किसी दिन कोई गड़बड़ न हुई और दिन-दिन जख्म भरते हुए लगभग महीने भरमें बिल्कुल भर गया। स्टीमरके डाक्टरकी रायके मुताबिक डाक्टरी मरहमसे भी इतना समय लगनेकी बात थी।

"इन घरेलू उपचारोंके विषयमें मेरा विश्वास और उनपर अमल करनेकी मेरी हिम्मत बढ़ी। इसके बाद मैंने अपने प्रयोगों-का क्षेत्र खूब बढ़ाया। जख्म, ज्वर, अजीर्ण, कामरू इत्यादि रोगों-के लिए मिट्टीके, पानीके और उपवासके प्रयोग छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुषोंपर मैंने किए और अधिकांश सफल हुए।

"एक वक्त था कि जब मैं सुबह चाय पीता, दो-तीन घंटे बाद नाश्ता करता, एक बजे भोजन करता, फिर ३ बजे चाय पीता और छः-सात बजे पूरा भोजन करता। उन दिनों मेरी दशा अत्यंत दयनीय थी। जब-तब बदन में सूजन आ जाती। दवाकी शीशी हर दम पास रहती। डटकर खा सकनेके लिए जुलाब लेता और ताकतके लिए तरह-तरहके टानिक (पुष्टिकर दवाइयां)। मेरा खयाल है, आज, तबसे मेरी उम्र बहुत ज्यादा होते हुए भी, उस समयकी अपेक्षा मुझमें काम करने की ताकत तिगुनी अधिक है।"

: ९ :

धूप-स्नान

लूई कूनने अपने साधनोंमें सूर्य-किरणोंके सेवनकी (Sunbath) बड़ी तारीफ की है। अब तो केवल सूर्य-किरणोंसे अधिकांश रोग दूर करनेके लिए हीलियोथेरैपी (Heliotherapy) नामकी एक चिकित्सा-पद्धति ही चल गई है। डा० रोलियर-ने इसपर एक बड़ी अच्छी पुस्तक लिखी और स्वीजरलैंडमें प्रधानतः सूर्य-किरणोंसे इलाज करनेवाला एक चिकित्सालय खोलकर हजारोंको उससे लाभ पहुंचाया।

भारतीय साहित्यमें भी सूर्यकी इतनी महिमा गाई गई है कि उसे लोग 'सूर्यनारायण' और 'सूर्यभगवानके' नामसे पुकारने लगे। लेकिन आज सूर्यकी किरणोंमें मौजूद अद्भुत रोगनाशक शक्ति-को भूलकर लोग दवाकी शीशियोंपर विश्वास करने लगे हैं। बहुत लोग सूर्यके नामपर रविवारका व्रत करते हैं। एक देहाती कहावत है—"एक अत्तवार के (रविवार) भुखले (उपवास से) जनमक (जन्मका) कोढ़ नाहीं (नहीं) जात (जाता)।" इस कहावतसे पता चलता है कि कभी कोढ़-जैसे भयंकर रोगके लिए उपवास और सूर्यकी उपासना प्रचलित थी।

वेदमें भी सूर्यकी बड़ी महिमा गाई है—

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्हन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः।

—सूर्य उदय होनेके बाद, अस्त होनेतक, अपनी किरणोंसे रोगोत्पादक क्रिमियोंका नाश करता रहता है।

जो चीज कम-से-कम ५००० साल पहले वेदोंमें कही गई थी

वही वर्तमान समय में विज्ञान ने बड़ी शोध–खोजके बाद प्रकट की है कि टी० बी० के कीड़े (जर्म्स) उबलते पानीमें न मरनेपर भी सूर्यकिरणोंसे बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते हैं––फिर दूसरे कीड़ोंका नाश होनेमें तो संदेह ही क्या है।

उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा
दृष्टांश्चाघ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन्।

––अंधकारनाशक, विश्वप्रकाशक सूर्य सब दृष्ट और अदृष्ट क्रिमियोंको नष्ट करता हुआ पूर्व दिशासे उदय होता है।

अनुसूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।

––तेरे सब हृदयरोग तथा पांडुरोग (कामला, हलीमक––Jaundice) उदयकालिक नारंगी रंगवाले सूर्यके द्वारा शरीरसे बाहर निकल जायं।

उदय कालका सूर्य (उगनेके घंटेभर बाद और दो घंटेतक) नारंगी रंगवाला होता है। वही किरणें हमारे नग्न शरीरपर, और जाड़ा हो तो एक पतला कपड़ा पहनकर पड़नी चाहिए।

प्रश्नोपनिषद्में कहा है––

प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।

––उदय कालका सूर्य सारे जगत्का प्राण है।

ऋग्वेदमें तो सूर्यको स्थावर जंगमका आत्मा बतलाया है––

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।
प्राणेन विश्वतो वीर्यं देवाः सूर्य समैरयन्।

––देवता सब प्रकारके वीर्योंसे (गुणोंसे) युक्त सूर्यको अपने प्राणोंसे संबंधित करते हैं––यानी भिन्न-भिन्न प्रकारसे सूर्य-प्रकाशका सेवन करते हैं।

गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि

लाल रंगकी गायोंका दूध पीनेसे और सूर्यकी किरणोंके लाल रंगसे व्यक्ति हृष्टपुष्ट होता है, दीर्घ आयु मिलती है, सुंदरता और बल मिलता है।

सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः।

—तेरे सिरके रोगोंको और हृदयवेधी शूलको और अंग-वेदनाको यह उदय होता हुआ सूर्य शमन करे।

स नो मृडाति तन्वे ऋजुगो रुजन्।

—वह सीधा जानेवाला (सूर्य) हमारे शरीरोंको आरोग्य देता है, दोषोंको दूर करता है।

मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास
एनं परुष्परुराविवेश यो अस्य।

—हे सूर्य ! सिरदर्दसे, खांसीसे तथा इस मनुष्यके पोर-पोर में (जोड़-जोड़ में) जो रोग घुस गया है उससे, इसे मुक्त कर।

यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो,
वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च।

—इनके सिवा दूसरे जो वात, पित्त, कफ रोग हैं, उन्हें भी वनस्पति और पर्वतके संसर्गसे यानी वन-पर्वतकी खुली हवामें रहकर सेई हुई किरणोंसे हटा।

निररिंण सविता साविषत्पदो निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा।

—सविता (सूर्य) वरुण (जल) मित्र (प्राणवायु) अर्यमा (आकका पौधा) हाथ और पावोंके दर्दको दूर करें।

इसमें सूर्य, हवा, पानी और आकके पौधेका दर्द दूर करनेमें उपयोग कहा गया है।

आज भी आकके पत्ते दर्दपर बांधे जाते हैं।

सूर्यकी किरणोंसे स्त्रियां लाभ उठाती थीं, यह स्त्रियों के लिए **"सूर्यरश्मीन् अनुसञ्चरन्ति। मरीचीः अनुसञ्चरन्ति"**, कहकर प्रकट किया गया है।

: १० :

वायु और प्रकाशका उपयोग

मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः। (ऋ० ८।२०२३)

—प्राकृतिक पदार्थोंमें वायु प्राणिमात्रके लिए औषधरूप है।

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयो भु नो हृदे
प्राण आयूंषि तारिषत्। (ऋ० १०।१८६।१)

—वायु हृदय-संबंधी रोगोंमें हितकर है, आयुको बढ़ाता है।

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहस

—वायु और सूर्यके जानने योग्य गुणोंका हम मनन करते हैं। वे दोनों सम्पूर्ण जगत के तारक हैं। वे दोनों हमें पापसे (रोगोंसे) बचाएं।

मन्वे वां मित्रा वरुणावृतावृधौ सचेतसौ।

—हे मित्र (वायु) और वरुण (जल), मैं आप दोनोंका मनन करता हूं, आप दोनों सत्यको बढ़ाने और स्फूर्ति देनेवाले हैं।

ठंडे पानीसे नहाकर ठंडी हवामें घूमने जानेमें या कोई किसी प्रकार का व्यायाम करनेमें कितनी स्फूर्ति आती है!

जीवितयोपनान् एनान् कण्वान् गिरि आवेशय।

—जीवनका नाश करनेवाले ये रोग-बीज जिनके अंदर प्रवेश कर गये हों अर्थात् जिन्हें ये रोग हो गये हों, उन्हें पहाड़पर ले जाओ।

तमांसि यत्र गच्छन्ति तत्क्रव्यादो अजीगमम्।

—अंधकारपूर्ण स्थानोंमें रक्त, मांसको खानेवाले रोग-बीज रहते हैं। मतलब हुआ, नीरोग रहनेके लिए प्रकाशयुक्त हवादार स्थानमें रहना चाहिए।

: ११ :

रोगोंमें दवाकी अनुपयोगिता

अबतकके वर्णन पढ़कर पाठक समझ गये होंगे कि रोग दूर होनेके लिए मनुष्योंको दवाकी नहीं, बल्कि जरूरत है हवाकी, प्रकाशकी, जलकी, मिट्टीकी, आवश्यक आरामकी, व्यायामकी, आहार-विहारमें मिताचारिता की—संयमकी। और उससे भी अधिक आशापूर्ण मनःस्थितिकी।

इसके समर्थनमें वेद और आयुर्वेदके अनेक प्रमाण दिये जा चुके हैं। अब आगेके प्रकरणमें हम देश और विदेशके अनेक महापुरुषों तथा दिग्गज डाक्टरोंके वचनों द्वारा यह दिखानेकी कोशिश करेंगे कि रोगोंमें दवा फायदा नहीं, बल्कि नुकसान करती है।

डाक्टर या उनकी दवाएं रोग मिटा सकती हैं, यह वहम दूर करनेको नीचे कुछ आंकड़े दिये जा रहे हैं। ये सन् १९२३ की ब्रिटेनके रजिस्ट्रार जेनरल की ७६ वीं वार्षिक रिपोर्टसे लिये गए हैं, जिसमें, उस साल वहां किस रोगसे, किस पेशेवाले कितने मरे, यह हिसाब भी दिखाया गया है। इसमें १०-१२ रोग और १४-१५ पेशे लिये गए हैं। अनेक दृष्टियोंसे यह तुलना ज्ञानवर्द्धक है। इससे पता चलता है कि कौन-सा पेशा स्वास्थ्यके लिए हितकारी है, कौन-सा हानिकारक। यह देखने और जनताको समझानेका काम डाक्टरोंका होता है, पर रिपोर्टसे मालूम होता है कि डाक्टरोंका अपना स्वास्थ्य ही तो दूसरोंके मुकाबलेमें अधिक खराब रहता है।

भिन्न-भिन्न रोगोंसे मरनेवाले खेतिहर-मजदूर और डाक्टरों के तुलनात्मक अंक—

रोगोंके नाम	खेतीके मजदूर	डाक्टर	प्रतिशत अधिक
न्यूमोनिया	४०	६७	७०
रक्तवहा-संस्थानसंबंधी (सर्क्युलरी सिस्टम)	५१	९३	८५
कैंसर	५४	७०	३०
मस्तिष्क संस्था (नर्वस सिस्टम)	४५	८०	८५
यकृत्	५	२९	४८०
मधुमेह	४	१३	२२५
वृक्कशोथ	१३	३९	२००
अन्यान्य मूत्र-विकार	१०	१६	६०
पाचन-संबंधी रोग	१९	५०	१६०

इन अंकोंसे पता चलता है कि कम-से-कम इन रोगोंकी दवा डाक्टरोंके पास नहीं है, अन्यथा ये अपनेको पहले रोगमुक्त करते।

इन अंकों से दूसरी बात यह सिद्ध होती है कि गांवोंमें सादे खानपानपर रहने वाले किसान, डाक्टरोंकी अपेक्षा इन भयंकर रोगोंसे कम संख्यामें पीड़ित होते हैं—यानी स्वस्थ रहनेके लिए जीवनमें सादगी जरूरी है, न कि दवा।

हिंदुस्तानके कुछ धनिक यह समझते हैं कि जो बीमारी हिंदुस्तान के डाक्टरोंसे अच्छी नहीं हो पाती, वह विलायतके डाक्टरोंसे अच्छी हो सकती है, ये अंक उनका भी भ्रम दूर करेंगे। जब ये डाक्टर अपनी ही बीमारी दूर नहीं कर सकते तो दूरवालों-की कैसे दूर करेंगे? अंग्रेजी में कहावत है:

'O physician heal thyself'—वैद्यजी, खुदका फिक्र कीजिए।

: १२ :

दवापर अभिमत

हिंदुस्तानमें एलोपैथ—डाक्टर प्रायः अपनी पद्धतिको सर्वश्रेष्ठ और वैज्ञानिक बताकर अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंको कोसते रहते हैं। कुछ लोग उनके वाग्जालमें फंसकर एलोपैथीको वैज्ञानिक माननेकी भूल करते हैं। आशा है कि आगेके वक्तव्योंसे इस संबंधमें उन्हें एक नई दृष्टि मिलेगी।

यूरोप और अमेरिकामें औषधवादके (Medical Science) सैंकड़ों महान् आचार्योंने डाक्टरी और औषधवादकी जो बुराइयां प्रकट की हैं उनमें कुछके मत यहां दिये जा रहे हैं। वे अपने समयके दिग्गज विद्वान थे, उन्होंने हजारोंको डाक्टरी पढ़ाई थी, बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे थे, जिनमेंसे कई आज भी मेडिकल कालेजों में पढ़ाए जाते होंगे—कम-से-कम पुस्तकालयोंकी शोभा तो जरूर बढ़ाते होंगे। वे व्यवसायमें खूब धन भी कमाते थे। लेकिन दीर्घकालके अनुभवसे, यह ज्ञान होनेपर कि एलोपैथीकी निदान-पद्धति, औषधियां और चीरफाड़, रोगीके लिए अत्यंत हानिकर हैं, अपने सहवर्गियों द्वारा अपमानित होनेकी जोखिम लेकर भी, उन्होंने इनके दोष दिखलानेमें आनाकानी नहीं की। ये सत्यके उपासक धन और यशको लात मारकर भी तथ्य प्रकट करनेसे न चूके। सत्यका अन्वेषक, **'दोषा वाच्या गुरोरपि, शत्रोरपि गुणा वाच्या'**—गुरुके दोष और शत्रुके भी गुण कहनेसे मुंह नहीं मोड़ता। ये सत्यके प्रकाशको ढका हुआ न देख सकते थे।

अंग्रेज चिकित्सक डा० फर्थ—मैं कभी समझ न पाया कि डाक्टरोंमें तथा उनके चिकित्सा-विज्ञानमें (Medical Science) लोग कैसे विश्वास करते हैं?

गौरसे देखनेपर यह समझनेमें कोई कठिनाई न होनी चाहिए कि यह संपूर्ण चिकित्सा-विज्ञान—औषधोपचार-कला स्पष्ट, किंतु कलापूर्ण ठगीके सिवा और कुछ नहीं है। इसे चलाते रहनेवाले डाक्टर ठग हैं अथवा अपने-आपको धोखा देनेवाले मूर्ख।

खाने-पीने या लगानेकी हर प्रकार की दवाइयां दुखियोंके दुखको केवल बढ़ाती हैं।

प्रो० डा० बार्कर—दवाके रूपमें दी गई शराबके कारण मैंने बहुतेरी महिलाओंको शराबी बन जाते देखा है।

दूसरोंकी हजामत बनाकर सीखनेवाले अनाड़ी नाईकी भांति डाक्टर भी लोगोंपर व्यर्थ प्रयोग करते रहते हैं। चिकित्सा-शास्त्रके ग्रंथकारोंने भी स्वतंत्र रूपसे खोज करनेके बजाय अपने पूर्ववर्तियोंकी भूलोंकी नकल भर की है।

डा० इवांस (लंदन)—आजकी औषधोपचार-पद्धति (डाक्टरी) बिल्कुल अनिश्चित तथा असंतोषजनक है। इसकी जड़में इसे विश्वसनीय बना सकनेवाला कोई तत्त्व—दर्शन नहीं है, न व्यवहार-बुद्धिके साथ इसका कोई नाता-रिश्ता है।

प्रो० ग्रेगरी (एडिनबरा)—औषधसंबंधी निन्नानवे प्रतिशत बातें असत्य हैं और औषध-विज्ञानके अधिकांश सिद्धांत अनर्गल प्रलाप मात्र हैं।

डा० रैमजे (लंदन)—वर्तमान चिकित्सा-पद्धति अस्पष्ट, खोखली और असंगत कल्पनाओंका संग्रहमात्र है। हमारी कोई

दवा कभी किसीको लाभ नहीं पहुंचाती। यही नहीं, उल्टे वह रोगी-की हालतको बदतर बनाती है। यह कहनेमें मुझे कोई हिचक नहीं है कि अधिकांश मौकोंपर रोगी डाक्टरकी सहायतासे बचा रह-कर अधिक निरापद रह सकता है। अपने व्यवसाय-बंधुओंके (डाक्टरोंके) देखे हुए हथकंडे मुझे ये कठोर शब्द कहनेको मजबूर करते हैं।

प्रो० रश (फिलेडेल्फिया)—शवच्छेदोंसे (dissections) हमें रोज मालूम होता है कि हम निदान-विज्ञानसे (pathology) बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। उसके आधारपर नुस्खे लिखते हुए हमें शर्म आनी चाहिए। हमने भ्रांत तथ्यों और गलत सिद्धांतोंके मोहमें पड़कर न जाने कितनी बुराइयां की हैं। हमने सिर्फ रोगोंकी संख्या ही नहीं बढ़ाई, उन्हें अधिकाधिक भयंकर बना दिया है।

डबलिन मेडिकल जर्नल—आज चिकित्सा-विज्ञान (Medical Science) कहलानेवाली इस बिल्कुल अनिश्चित और सर्वथा असंतोषजनक पद्धतिके साथ 'विज्ञान' शब्दका संयोग करना एक भयंकर भूल कहलायेगी। यह बेमेल तर्कों और जल्दबाजीमें गलत तरीकोंसे निकाले हुए नतीजों, तोड़े-मरोड़े हुए तथ्यों, असंतुलित तुलनाओं, अर्थरहित अनुमानों और केवल निरुपयोगी ही नहीं, बल्कि खतरनाक सिद्धांतोंका गोरखधंधा मात्र है।

डा० फ्रैंक—हर साल हजारों रोगी, इस खतरनाक औषधो-पचारका पेशा करनेवालों या कहिए 'अधिकार प्राप्त हत्यारों' द्वारा मौतके मुंहमें पहुंचा दिये जाते हैं।

फ्रांसके सुप्रसिद्ध शरीरशास्त्री और **विकृतिविज्ञान-वेत्ता डा० मेजेंदी**—हमारे पास शायद ही शरीर-विज्ञान संबंधी कोई ठोस सिद्धांत हो। ऐसी दशामें उपचारमें हमारा

सर्वथा विफल होना असंभव नहीं है ।

हमारा रोग-संबंधी अज्ञान इतना अधिक है कि रोगीका वह उपचार करनेकी अपेक्षा कि जिसके प्रयोगका प्रयोजन और हेतु दोनों हम नहीं समझते, और जो प्रायः रोगीको मौतके समीप पहुंचा देता है, यह कहीं अच्छा होगा कि हम कुछ भी न करके रोगको प्रकृतिके भरोसे छोड़ दें ।

सुप्रसिद्ध शरीरशास्त्री डा० हाल—मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि बच्चोंकी अधिकतर मृत्युएं शक्ति क्षीण करनेवाली (Exhausting Remedies) दवाओंके गलत और अनुचित प्रयोगके कारण हुआ करती हैं ।

डा० बास्टक—रोगीको हमारे द्वारा दी जानेवाली दवाकी हर खुराक उसकी भीतरी शक्ति (जो स्वयं शरीरको निरोग करनेमें समर्थ होती है) के साथ खिलवाड़ करनेकी कोशिश है ।

डा० हनिमैन—(एलोपैथी—ए वर्ड ऑव वार्निंग टू पेशेंट्स) देशके हजारों नौनिहाल अपनी भरी जवानीमें क्षय और प्लूरसी आदि रोगोंसे मरते हैं । यदि डाक्टरोंमें सत्यताका लेश भी हो तो उन्हें स्वीकार करना पड़ेगा कि इनकी मृत्युके कारण वे ही हैं । इनमेंसे एक भी केस ऐसा नहीं होता, जिसमें डाक्टरकी सुंदर उपचार-कला, मूर्खतापूर्ण रक्तक्षरण और फुफ्फुसावरण प्रदाहमें प्रयुक्त ऐंटीफ्लोजस्टीनने भविष्यमें क्षयका रूप लेनेवाली हालतकी नींव न डाली हो ।

वर्तमान एलोपैथीके जन्मदाता **हिपोक्रेट**—प्रकृति रोग मिटाती है, डाक्टर नहीं ।

डा० काउल्स—प्रायः डाक्टर रोगोंकी बात जानते हैं, स्वास्थ्यकी नहीं ।

सर फ्रेडरिक टीब्ज, एम० डी०, एफ० आर० सी० एस०, के सी० बी० ओ०, सी० बी०, सप्तम एडवर्ड के और लंदनके अस्पतालके कन्सल्टिंग सर्जन और सर्जरीके प्रोफेसर—मैं एक ऐसे युगकी बाट देख रहा हूं कि जब लोग बीमार पड़नेपर दवा लेनेकी बेढंगी आदत छोड़ देंगे।

एस्टली कूपर—एलोपैथी अटकलपच्चू शास्त्र है।

सर जान फारब्ज़—सयाने-सयाने डाक्टरोंके होते हुए भी बहुतेरे मनुष्योंका रोग प्रकृतिने ही दूर किया है।

डाक्टर बेकर—ज्वरसे मरनेवालोंकी अपेक्षा ज्वरकी दवासे मरनेवालोंकी तादाद कहीं ज्यादा होगी।

डाक्टर रामसे वाटसन—हम लोगोंका व्यवसाय बहुत प्रश्नोंके संबंधमें शक-सुबहोंसे भरा हुआ है।

डाक्टर फाजबेले—डाक्टरी दुनियासे उठ जाय तो मनुष्य-जातिका अकथनीय लाभ होगा।

डाक्टर मेसनगुड—लड़ाई, महामारी और अकालसे मरनेवालोंकी अपेक्षा कहीं अधिक दवाइयोंकी भेंट चढ़ते हैं।

स्वर्गीय सिविल सर्जन लक्ष्मीनारायण चौधरी—(जबलपुर)—"प्रकृतिद्वारा मिट्टीसे पैदाकी जानेवाली दवाओंका (खाद्य पदार्थोंका) मुकाबला संसारकी बड़ी-से-बड़ी प्रयोग-शालाओंमें तैयार की जानेवाली दवाएं नहीं कर सकतीं। प्रकृति-की इन दवाओंमें उचित परिमाणमें शरीरको चंगा रखनेवाले सब तत्त्व मौजूद हैं। ये सैकड़ों पेटेंट तथा दूसरी दवाएं, जिनके बारेमें बहुत जोरोंसे कहा जाता है कि उनके बनानेमें क्लोराइड कैल्सियम—एक तरहका चूना और लोहा ठीक-ठीक मिकदारों-में मिलाए गए हैं, बिल्कुल बेकार ही नहीं, बहुत हानिकर हैं।

डाक्टरोंके इन बड़े-बड़े ऐलानों और दवाओंके बड़े-बड़े नामोंपर ध्यान देना गलत है। ये डाक्टर एक तरहके सौदागर हैं, जो पैसों-के लिए, न कि रोगीके फायदेके लिए, सौदागरी करते हैं।

इसी तरहकी सौदागरीकी मामूली मिसाल मैदा और सफेद चीनीकी तिजारत है। ये दोनों गैर-कुदरती चीजें हैं और इनसे तंदुरुस्तीको बहुत धक्का पहुंचता है। शरीरकी बाढ़ और उसको चंगा रखनेके लिए जिन विटामिनों और खनिज लवणोंकी जरूरत है वे सब, देखनेमें आंखोंको अच्छा लगनेके तथा बिक्री बढ़ानेके खयालसे, आटे और गुड़से निकाल दिए जाते हैं। लोग यह नहीं समझते कि लवणों और विटामिनोंके निकल जानेसे इन दोनों चीजोंने करोड़ोंको भारी नुकसान पहुंचाया है।

अपनी शुरू जिंदगीमें मैंने दवाओंसे बहुत फायदा समझा था पर लंबे तजरबेके बाद मैं इसी नतीजेपर पहुंचा हूं कि "दवाओं से बड़ा नुकसान पहुंचता है। दवाओंसे रोग दब जाता है, अच्छा नहीं होता। डाक्टरका असली काम लोगोंको बीमार पड़नेसे बचाना होना चाहिए, न कि उसे अच्छा करनेके लिए दवाका इस्तेमाल करानेका। दवाओंसे बीमारी कभी अच्छी नहीं होती।"

दवा और डाक्टरोंके बारेमें चिकित्सकोंके अतिरिक्त संसारके कुछ अन्य महापुरुषोंके मत पढ़िए।

डाक्टर वैद्य न होते हुए भी **गांधीजीने** स्वास्थ्यके संबंधमें खूब विचार किया था, पढ़ा था, औरअपनेपर ही नहीं, अन्य सैकड़ों-पर भी प्रयोग करनेके बाद उन्होंने अनेक लेख और दो बहुमूल्य पुस्तकें स्वास्थ्यके संबंधमें लिखी थीं। उनकी सबसे बड़ी बात यह थी कि अंतिम समय तक उन्होंने अपना स्वास्थ्य ठीक रखा था।

महात्मा गांधी—"डाक्टर, वैद्य, हकीम—ये कमाईके लिए चिकित्सा-कार्य चलाते हैं। दूसरोंके भलेकी खातिर ये नहीं सीखते। यह दूसरी बात है कि इनमें कोई-कोई परोपकारी भी होते हैं। सिर्फ कुदरती इलाजका ही जन्म परोपकारमें-से हुआ है।

"रोगका उपचार करना तो ठीक है, लेकिन उसके लिए दवा लेना व्यर्थ है, उल्टे उससे बहुत बार हानि होती है।"

भूदान-आंदोलनके प्राण, महान् विचारक **संत विनोबा**—

"अभी दुनियाके विद्वान डाक्टरोंने इकट्ठे होकर और चर्चा करके जाहिर किया था कि इधर तो हम नई-नई दवाइयां तैयार कर रहे हैं और उधर नये-नये रोग पैदा हो रहे हैं।

"डाक्टर पैसा लेकर सेवा करते हैं। कोई छोटा रोग हो तो उसको बड़ा रूप देते हैं और साल-सालभर औषध खिलाते रहते हैं। बड़े लोग बेचारे डरपोक होते हैं, जरा छातीमें दर्द हुआ, तो डाक्टर उनसे कहते हैं कि क्षय रोग हुआ है। फिर उनको औषध खिलाकर काफी पैसे कमाते हैं। यहां मैं डाक्टरोंकी निंदा नहीं कर रहा हूं। यह बात डाक्टरोंने ही खुद पत्र लिखकर कही है। उन्होंने लिखा है कि हम ऐसे हथकंडे करते हैं कि जिससे पैसा मिलता है। आज जो पैसेकी रचना हुई है, उसमें डाक्टर और रोगी, दोनोंके हित अलग-अलग माने जाते हैं। जब लोग बीमार नहीं पड़ते हैं, तब डाक्टरोंका धंधा अच्छा नहीं चलता, इसलिए उन्हें दुःख होता है। जब लोग खूब बीमार पड़ते हैं, तो डाक्टरोंको खुशी होती है।

"रोग-निवारणकी दृष्टिसे पहला नंबर हम उस चीजको देंगे, जिसे चिकित्सा-शास्त्रमें 'पंचकर्म' कहा है और आधुनिक भाषामें जिसे 'प्राकृतिक चिकित्सा' कहते हैं।

"देहातियोंको स्वाभाविक तथा संयमशील जीवन और नैसर्गिक उपचार सिखाने चाहिए। रोगकी दवाइयां देनेकी अपेक्षा हमें ऐसा जतन करना चाहिए कि रोग होने ही न पावें।"

लार्ड फ्रैंसिस जेफरी (१७७३-१८५०)—दवा एक ऐसी कला—या कहिए विज्ञान—है, जो रोगीको उसकी बीमारीमें, कुदरतके उसे अच्छा करने या खत्म करनेतक, भुलावेमें रखकर तसल्ली दिलाती रहती है।

बीमारी और दवा किसी गांवके दो गुंडोंकी तरह हैं, जो एक-दूसरेको मारते-काटते रहते हैं, लेकिन अपने सामान्य शत्रु प्रकृति-के मुकाबलेके लिए दोनों एक हो जाते हैं!

नेपोलियन बोनापार्ट (डाक्टरको संबोधित करके)—डाक्टर! जीवनके सिद्धांतोंपर आक्रमण मत करो—उन्हें अपने आप अपनी रक्षा करने दो, तुम्हारी दवाओंकी अपेक्षा स्वयं वे अपना काम कहीं अच्छा करेंगे।

इंगलैंडके नामी पादरी सी० काल्टन (१७८०-१८३२)—दवा लेनेका अर्थ है कि एक और नई बीमारी पल्ले बांधना या पुरानीको दबाना।

फ्रैंकलिन—आराम भगवान् करता है, डाक्टर अपनी जेब भरता है।

पोप—व्यायाम, मिताचारिता, शुद्ध वायु, आवश्यक आराम, ये बड़े-से-बड़े डाक्टर हैं।

थोरो—मनुष्य की विश्वास करनेकी प्रवृत्तिके साथ अधिक विश्वासघात करनेवाली वस्तु दवाके सिवा दूसरी नहीं है।

हैजलिट—दवाकी टोटकेबाजियोंके विश्वासियोंका हम मूर्ख कहकर मजाक उड़ाते हैं और वक्तपर हम स्वयं उनमें फंस जाते हैं कि शायद इनसे कुछ फायद हो ही जाय!

: १३ :

क्या दवा बिल्कुल बेकार है ?

इतने महानुभावोंके मत पढ़नेके बाद भी कुछ लोग कह सकते हैं—

"दुनियामें लाखों ही दवासे अच्छे होते देखे जाते हैं, उस दशामें दवाको व्यर्थ कैसे माना जा सकता है ?"

बदलेमें इन दोस्तोंसे पूछा जा सकता है कि अगर दवासे आराम होना माना जाय तो दवा बदलनी क्यों पड़ती है ? एक ही डाक्टर पांच-पांच, सात-सात बार दवा बदलता है और कई-कई डाक्टर बदले जाते हैं, इस दशामें किस दवाको रोग मिटानेका श्रेय दिया जायगा ?

वही दवा, उसी प्रकारके अन्य रोगियोंको देनेपर यदि वे अच्छे नहीं होते तो अनिवार्यतः यह माना जायगा कि वह दवा काम नहीं करती। एक ही तरहकी दवा कितनी ही बार कितने ही रोगियों-पर व्यर्थ होती है। इससे जान पड़ता है कि किसी रोगपर किसी दवाका परिणाम निश्चित नहीं है, अंधेरेमें ढेला फेंकने-जैसा काम है, सौ-पचास फेंकनेपर संयोगसे एक ढेला निशानेपर लग सकता है।

विदेश, और इस देशमें, लाखों आदमी डाक्टर-वैद्योंसे थक-थकाकर प्राकृतिक चिकित्साकी शरण में आए और अच्छे हुए। ये दवासे अच्छे क्यों नहीं हुए ? अन्य लाखोंकी गवाहियां मिल जायंगी, जो दवासे अच्छे न होनेपर दवा छोड़ बैठे और फिर अपने

आप चंगे हुए। और करोड़ोंकी कहानियां मिलेंगी, जो दवा खाते-खाते कालके गालमें चले गए।

किसीने कहा है—**जड्यां बूट्यां जन बचे तो बैद क्यूं मर जाय** ? अगर दवासे लोग, अच्छे हो सकते हैं तो डाक्टर-वैद्य क्यों मरते हैं ?

कोई डाक्टर कह सकता है कि डाक्टर, वैद्य बीमारी अच्छी कर सकते हैं, मौतको नहीं रोक सकते।

मनुष्यकी मौत किसी-न-किसी बीमारीमें ही तो होती है ? बिना किसी रोगके बैठे-बिठाए मरनेवाले तो हजारमें पांच भी नहीं होते। रोगी रहकर मरनेवाले सब दवाकी व्यर्थता सिद्ध करके ही तो मरते हैं।

यों लाखों ही क्यों, करोड़ों दवासे आराम होते दिखाई देते हैं—दवा फिर वह एलोपैथी हो, आयुर्वेदिक हो, होमियोपैथी हो, हकीमी हो अथवा गांव में इधर-उधर पाई जानेवाली जड़ी-बूटी या घास-पात हो। भारत की ८० प्रतिशत जनता, जो देहातमें बसनेवाली है, दवाके नामपर वही घास-पात इस्तेमाल करके अच्छी होती है। यदि दवासे रोग दूर होना स्वीकार किया जाय, तो मानना पड़ेगा कि हर तरह की दवासे ही रोग जाता है। और दवासे ही क्यों, लाखों झाड़फूंक, गंडा-ताबीज, डोरायंत्र, मंत्र, पूजापाठ, जप आदि अनेक औषध-रहित साधनोंसे आराम होते पाए जाते हैं। बहुत पहले तो रोग-निवृत्तिके यही साधन अधिक चलते थे—गांवोंमें आज भी चलते हैं। लेकिन, यहां हमें सिर्फ औषधवादपर विचार करना है।

बिना दवाके आराम होनेवालोंपर भी विचार करें तो उनकी गिनती ही नहीं की जा सकती। सब मनुष्य, सब समय,

सब रोगोंमें कहां कोई दवा लेते हैं ? मनुष्यके सिवा संसारके अन्य असंख्य प्राणी भी रुग्ण होनेपर क्या दवा लेते हैं ? अच्छे तो अपने-आप होते ही हैं। अन्यथा दुनियासे उनकी नस्लें कबकी खत्म हो गई होतीं। सर्दी, जुकामके लिए कितने आदमी दवा लेते हैं ? डाक्टर लोग जुकामको एक बड़ा रोग मानते हैं। अनेक बीमारियां बिगड़े हुए जुकामके परिणामस्वरूप मानी जाने लगी हैं। देहातमें साधारण ज्वरमें दवा लेनेका रिवाज नहीं है। मामूली दस्त और आंवोंमें भी कोई दवा नहीं दी जाती। दो-चार दिन तो लोग योंही देखते हैं कि रोग अपने-आप ठीक हो जायगा। इस प्रकार करोड़ों स्वतः अच्छे होते हैं। जरा अस्वस्थ होते ही तुरत कोई-न-कोई दवा लेनेकी भावना तो नये जमाने-की देन है।

कुछ लोग तो अच्छे रहनेके लिए भी दवा खाने लगे हैं। रोग-से मुक्त होनेके लिए ही नहीं, मुक्त रहनेके लिए भी इंजेक्शन दिए जाते हैं। अनेक रोगोंकी रोकथामके लिए टीके दिये जाते हैं। स्वस्थ रहनेके लिए स्वास्थ्यके नियम पालने चाहिए या दवा खानी चाहिए ? डाक्टरोंकी बाढ़के साथ यह भावना बढ़ी है या बढ़ाई गई है; क्योंकि डाक्टरोंको आमदनीके नये-नये जरिए चाहिए। यहांतक कि शहरकी नकलमें देहातोंमें कहीं-कहीं अस्पताल बनानेकी मांग की जा रही है। विनोबाजी कहते हैं—"यदि गांवोंमें अस्पताल हुए तो यह देहातियोंका दुर्भाग्य ही होगा।"

: १४ :

आराम प्रकृति करती है

सच तो यह है कि दवाके प्रभावसे अच्छे होते माने जाने-वाले भी, दवासे नहीं, बल्कि प्रकृतिके प्रभावसे ही अच्छे होते हैं। दवाका केवल नाम होता है। यदि हमारे शरीरमें अपने-आप आराम करनेकी शक्ति मौजूद न होती यानी प्रकृति आराम न करती होती, तब—और तभी सब औषधवादियोंकी, और उनकी औषधोंकी, सही परीक्षा हो सकती। "बैद करे बैदाई, चंगा करे खुदाई"—आराम तो प्रकृति करती है (Nature cures) और उसका यश लेनेको डाक्टर-वैद्य दौड़ते हैं। किसी नम्र चिकित्सक-का कथन है—मैं उपचार करता हूं, अच्छा भगवान (भगवानकी बनाई हुई प्रकृति) करता है। "I treat, He cures."

सब प्राणियोंके शरीरमें रोगोंको अपने-आप अच्छा करनेकी शक्ति रहती है। उसे प्रकृति अथवा जीवनी-शक्ति कह सकते हैं।

इन दिनों कई जगह सरकारकी तरफसे आयुर्वेद और होमियोपैथी आदि पद्धतियोंकी दवाओंकी तुलनात्मक जांचके लिए अस्पताल खोले गए हैं, जहां कुछ खास रोगोंपर दवाओंकी जांच की जाती है। घर बैठे ही इतना तो कहा जा सकता है कि हर पद्धतिमें सौमें पचहत्तर आराम होंगे ही। कोई दवा न दीजिए तब भी होंगे, दीजिए तब भी होंगे। अधिकांशको कुदरत आराम करती ही है। सरकारको इन सबके साथ ही एक प्राकृतिक चिकित्सालय भी खुलवाना चाहिए, जहां किसी औषधपद्धतिसे,

फिर चाहे वह एलोपैथी हो, होमियोपैथी हो या आयुर्वेदीय हो, आराम न होनेवालोंका इलाज किया जाय। एलोपैथीको स्वयं-सिद्ध मानकर दूसरी पद्धतियोंकी परीक्षा, जांचका सही तरीका नहीं कहा जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धांत है कि मनुष्यकी अंतर्शक्ति—जीवनीशक्ति उसे नीरोग करनेके लिए शरीरमें किसी प्रकारसे किसी रूपमें एकत्र हुए दोषको बाहर निकालनेकी कोशिश करती है। उस कोशिशमें—कूड़ा बाहर निकालनेमें—कष्ट होना स्वाभाविक है। कष्टदायक भावका नाम ही रोग है। शरीर-की सफाईके लिए प्रकृतिकी ओरसे मिलनेवाले कष्टसे—रोग-से हमें घबड़ाना नहीं चाहिए। उससे तो हम आगे होनेवाले बड़े कष्टसे बचते हैं। घरमें सफाई करने आनेवाले मेहतरका तो हमें स्वागत ही करना चाहिए।

इस प्रकार एकत्र मलिनताको यानी शरीरके दोषको दूर करनेकी प्रकृतिद्वारा होनेवाली कोशिशका नाम ही तो रोग है। यदि हम इस अवसरका सही तरहसे उपयोग करना जान जायं तो तंदुरुस्ती हमारी मुट्ठीमें रहेगी। जैसे ज्वरमें, यदि हम उसे दबाने या जल्दी उतारनेकी कोशिश न करके ज्वरके आने-के कारणोंको समझकर उन्हें शीघ्रतासे दूर कर दें, तो ज्वर स्वयं चला जायगा। यही नहीं, हमें पहलेकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ कर जायगा। यही बात जुकाम, खांसी और आंव आदि अन्य उग्र रोगोंमें होती है।

सही उपचारका परिणाम यह होना चाहिए कि हम रोगसे पहलेकी अपेक्षा, अधिक स्वस्थताका अनुभव करें। तभी यह सिद्ध होगा कि रोग दोष-मुक्तिके लिए था। औषधवादी तो इतने-

से ही संतोष कर लेता है कि उसने तात्कालिक पीड़ाको नष्ट कर दिया। गांधीजीके कथनानुसार—'इसीको वह अपनी बड़ी विजय मानता है।' लोग भी एक बार रोगके लक्षण मिट जाने मात्रसे काम पूरा हुआ मान लेते हैं। ज्वर १०४° से ९७॥° पर आ जानेसे ही सफलता समझ ली जाती है। इतनेसे कामके लिए जमीन-आसमान एक किया जाता है। पर थर्मामेटरमें या हाथ-से गरमी न लगनेपर क्या यह मानना उचित होगा कि रोगी दोष-मुक्त हो गया? दवाके प्रभावसे शरीर गरम न लगनेपर भी ज्वरके साथ रहनेवाली सिरकी पीड़ा, शरीरका टूटना, कब्ज, भूखकी कमी, नींदका अभाव आदि लक्षण तो रहते ही हैं—गरमी जानेके साथ वे लक्षण नहीं जाते। बिना दवाके ज्वर जाने-पर ये लक्षण भी साथ ही जाते हैं। ज्वर गया माना तभी जाता है कि जब सब लक्षण ठीक हो जायं। केवल थर्मामेटरमें गरमी न आने मात्रसे ज्वर—रोग दूर हुआ नहीं समझा जासकता। ज्वरकी भांति ही अतिसार, आंव वगैरहका हाल होता है। दवासे आंव, दस्त बंद हो जाते हैं, लेकिन पेट फूल जाता है, शरीरमें शोथ आ जाता है—जिसे आमवात कहते हैं। शरीरमें दर्द रहने लगता है। दस्त जारी रहनेके समय होनेवाली तकलीफसे यदि दस्त बंद करनेपर कष्ट और बढ़ गया तो दस्त रोकने मात्रसे क्या फायदा?

ऐसी भूलें करनेवाले ही यह कहते पाये जाते हैं कि **"मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की"**।

अथवा एक उर्दू कविके इस कथनको दोहराते हैं—

इक न इक आरज़ा रहा हमको,
थमे दस्त तो बुखार आया।

कविने यह मज़ाक में कहा होगा पर वास्तविकता यह है कि

शरीरसे दस्तोंके रूपमें निकलते विकारको दवा देकर रोक दिये जानेपर कुदरतको उसे शरीरसे निकालनेको बुखार लाना स्वाभाविक है।

आयुर्वेदमें कहा है—

या ह्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च
सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत्

—उपचार वह चाहिए, जो उठे हुए रोगको मिटावे और नया न उठावे, न कि वह कि जो एक व्याधिको हरे और दूसरी पैदा कर दे। प्राकृतिक उपचारमें रोग आसानीसे दूर होनेके साथ ही दवाके कारण प्रायः नये पैदा होनेवाले रोगोंका (Drug Disease) डर बिल्कुल नहीं रहता।

: १५ :

प्राकृतिक चिकित्साकी विशेषता

डाक्टरकी जरूरत तो किसीके बीमार पड़नेपर होती है और बीमारके अच्छा हो जानेपर फिर न उसे रोगीसे कोई ताल्लुक रहता है, न रोगीको उससे। पर प्राकृतिक उपचारकका काम-लोगोंको ऐसी जीवन-पद्धति—आहारविहार रखना सिखाना है कि वे बीमार न पड़ें क्योंकि बीमार न पड़ना बहुत आसान है। कहा है—**"प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्"**—कीचड़में पड़कर उसे धोनेकी परेशानीकी अपेक्षा अच्छा है कि हम उससे दूर ही रहें। चरकमें कहा है—

प्राज्ञः प्रागेव तत्कुर्याद्धितं विद्याद्यदात्मनः

अर्थात्—बुद्धिमानको रोगी होनेसे पहले ही इस तरह रहना चाहिए कि रोगी न हो।

अंग्रेजीमें कहावत है—बीमारी न होने देना इलाजकी अपेक्षा बेहतर है (Prevention is better than cure)। बीमारको कितना शारीरिक और मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है, कितनी पैसेकी बरबादी होती है और कितना दूसरोंको उसके लिए परेशान होना पड़ता है?

बीमारको ऐसा उपचार बतलाना जिसे वह आसानीसे समझ सके और बिना किसी बाहरी मददके स्वयं कर सके।

आगे तन्दुरुस्त रहनेके लिए प्राकृतिक चिकित्सकको कोई नया नुस्खा लिखनेकी जरूरत नहीं है। तन्दुरुस्त रहने—बीमार न पड़नेका जो तरीका है वही तरीका दुबारा बीमार न पड़ने के लिए भी बताया जाना चाहिए।

: १६ :

नीरोग होनेके संक्षिप्त उपाय

१. रोगको दुश्मन न मानें। वह हमारे आहार-विहारकी भूलोंके कारण शरीरमें एकत्र हुए दोषको निकालनेका—हमें पहलेसे अच्छी हालतमें करनेका प्रकृतिका प्रयत्न है।

२. हमेशा मनको खुश रखें। आशावादी रहें।

३. जब कभी शरीर भारी जान पड़े, आराम करें। शारीरिक और मानसिक, दोनों तरहके कामका भार घटा दें।

४. खाना छोड़ दें या बहुत हल्का कर दें। ५. पेशाब पाखाने की हाजत कभी न रोकें पेट साफ न होता हो तो पेड़ू पर मिट्टीकी पट्टी रखें या एनिमा[1] लेकर पेट साफ कर लें। तीन चार दिन खाना बंद कर देने और उस समय रोज एनिमा लेकर पेट साफ कर लेनेसे उन अनेक साधारण रोगोंसे छुटकारा पाया जा सकता है, जो आगे चलकर असाधारण बन जाते हैं।

६. पानी नित्य अढ़ाई-तीन सेर पीना ही चाहिए। न पीते हों तो बीमारीके दिनोंमें तो इतनी मात्रा जरूर कर लें।

७. नींद कम-से-कम सात घंटे लेनी चाहिए। शरीरमें कोई खराबी हो तब तो जरूर इतनी देर सोना चाहिए।

८. नित्य ही, खासकर बीमारीमें शरीरके अंग-प्रत्यंगको रगड़कर नहाना आवश्यक है। इससे शरीरमें स्फूर्ति रहती है।

९. सांस लेनेके लिए हमेशा स्वच्छ हवा काफी मात्रामें मिलनी चाहिए। सबेरे दूरतक तेजीसे टहलने जानेसे फेफड़ोंको साफ हवा मिल सकती है।

१०. मानसिक चिंता बढ़ानेवाले कामोंसे बचना चाहिए, खासकर बीमारीकी दशामें।

---

१. एनिमा लेने की विधि परिशिष्टमें दी गई है।

परिशिष्ट

प्राकृतिक चिकित्साकी विधियां

१. एनिमा

१. **लेनेका समय**—यदि सुबह दो बार शौच जाते हों तो दूसरी बार शौच जानेके बाद और एक बार जाते हों तो पहली बार जानेके बाद, एनिमा लेना चाहिए। जिन लोगोंको निरंतर कई दिन एनिमा लेनेकी जरूरत हो वे रातको सोनेके पहले ले सकते हैं।

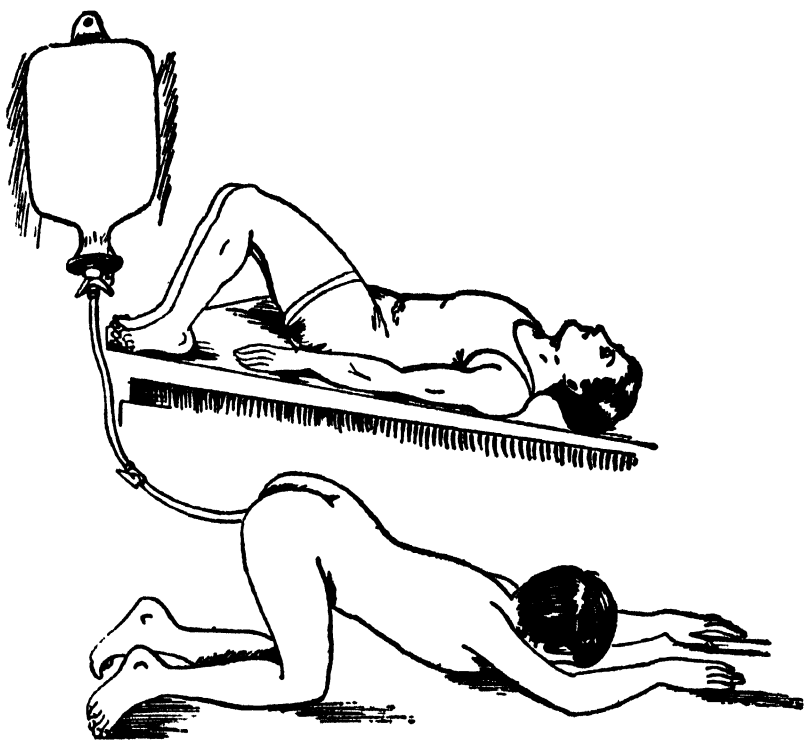

२. **लेनेका तरीका**—एनिमा सीधे लेटकर अथवा कुहनी और घुटनोंके बलपर होकर पुट्ठेको ऊपर करके भी लिया जा सकता है।

३. **पानी पीना**—एनिमा लेनेके तुरंत पहले आध सेर गरम अथवा ताजा पानी पीना लाभदायक है।

४. **टांगनेकी ऊंचाई**—एनिमाका बैग या बर्तन चार फुटसे ज्यादा ऊंचाईपर नहीं रहना चाहिए। ज्यादा ऊंचाईपर रखनेसे पानी अंदर जोरसे जाता है, इससे हाजत जल्दी हो जाती है।

५. **पानीकी मात्रा**—आंतोंमें ५ सेर तक पानी लेनेकी जगह है, लेकिन किसी जानकारकी देखरेखके बिना इतना पानी नहीं लेना चाहिए। आरामसे जितना लिया जा सके उतना ही लेना चाहिए। आरंभमें लोग थोड़ा ले पाते है। अभ्यास हो जाने पर अढ़ाई सेर पानी आसानीसे लिया जा सकता है। पहले दिनोंमें दो-अढ़ाई सेर लेना चाहिए, लेकिन अधिक दिनों तक लेनेकी जरूरत हो तो पानीकी मात्रा कम कर लेनी चाहिए।

६. **पानीकी गरमी**—पानी पहले कई दिनों तक इतना गरम लेना चाहिए कि हाथको बरदाश्त हो सके। हाथ जितना गरम पानी बरदाश्त कर लेता है उतना आंतें भी कर लेती है। ११०° से ११५° डिग्री (फारेनहाइट) तकका गरम लिया जा सकता है। नाजुक लोगोंको या ज्यादा दिनों तक लेनेकी जरूरत होनेपर पानी कम गरम या ताजा लेना चाहिए। अथवा गरम लेनेके बाद शौचसे लौटकर पावभर ठंडे पानीका एनिमा लेकर उस पानीको आंतोमें पड़े रहने देना चाहिए।

७. **पानीमें क्या डालें ?**—अढ़ाई सेर पानीमें, सुलभ हो तो, खट्टे नींबूका दो तोला रस डालना चाहिए। पानी और नींबूके रसको साफ कपड़ेसे छान लेना चाहिए। अढ़ाई तोला शहद भी अढ़ाई सेर पानीमें मिलाया जा सकता है। जिनका कोठा कड़ा हो, वे अढ़ाई सेर पानीमें एक तोला पिसा हुआ नमक मिला सकते हैं। छोटे बच्चोंको उम्रके अनुसार एनिमामें पाव-डेढ़ पाव सादा पानी काफी होता है।

८. **घुंडी खोलना**—एनिमा लेनेके पहले नलीकी घुंडी (नोजल)

को खोलकर दो तोला पानी निकाल देना चाहिए। इससे हवा निकल जाती है और मालूम हो जाता है कि नलीमें पानी ठीक आ रहा है या नहीं।

गुदामें डालनेवाली नलीको घी या किसी मीठे तेलसे चुपड़ लेना चाहिए। एनिमा ले चुकनेके बाद इस नलीको साबुन और गरम पानीसे धोकर रखना चाहिए।

९. **बीचमें पाखाना**—लेते-लेते जोरकी हाजत हो जाय तो पाखाने जा आना चाहिए और यह मालूम हो कि पूरी सफाई नहीं हुई है तो फिर आकर एनिमा लेना चाहिए।

१०. **रुकना**—एनिमा लेनेके बाद तीन-चार मिनट तक रुकना और दायें-बायें करवट लेना अच्छा है। इससे मल अंदर पानीमें घुल जाता है।

११. **पानी लेनेमें समय**—२॥ सेर पानी लेनेमें ८-१० मिनटसे ज्यादा नहीं लगने चाहिएं।

१२. **एनिमा के बाद शौच**—कई बार ऐसा होता है कि एक बारके शौच जानेमें ही सारा पानी नहीं निकलता। थोड़ी देरके बाद हाजत हो तो फिर जाना चाहिए। बचे हुए मलसहित पानी निकल जायगा। अगर आंतों-में पानी रह गया तो घंटे-दो घंटेमें पेशाब द्वारा निकल जायगा। उसके लिए चिंतित होनेकी जरूरत नहीं है।

एनिमाका पानी निकालनेके लिए गुदापर ज्यादा जोर नहीं डालना चाहिए, न पाखानेसे जल्दी उठकर भागना चाहिए। दस-बीस मिनट आराम-से बैठे रहनेसे पानी मलको घुलाकर अपने आप निकलेगा।

१३. **दो बार एनिमा**—अगर एक बार एक एनिमासे मल साफ न हो या कोठेमें मल ज्यादा होनेकी शंका हो तो एकके बाद दूसरा और तीसरा एनिमा भी लिया जा सकता है। पर यह चीज कभी-कभी ही ठीक हो सकती है। रोज दो-दो तीन-तीन बार एनिमा लेना ठीक नहीं। कुछ लोग रसाहारमें सुबह-शाम दो समय एनिमा लेना पसंद करते हैं, लेकिन ऐसा किसी जानकार चिकित्सककी सलाहसे ही करना चाहिए।

१४. **शौच-स्थान**—शौचका स्थान एनिमा लेनेके स्थानसे ज्यादा

दूर नहीं होना चाहिए। जितना पास हो उतना अच्छा है।

१५. **गर्भावस्थामें एनिमा**—जिन स्त्रियोंको गर्भके समय उल्टी वगैरहके उपद्रव होते है वे अगर खान-पान, व्यायाम आदि ठीक रखनेके साथ-साथ कुछ दिनों तक एनिमा लें तो उनकी बहुत-सी पीड़ाएं दूर हो जायंगी।

१६. **नहाना**—एनिमासे पेट साफ कर लेनेके बाद तुरंत नहानेमें कोई हानि नहीं है। बल्कि उससे स्फूर्ति आती है। नहानेका पानी गरम या ठंडा अभ्यासके अनुसार, लेना चाहिए।

१७. **खाना**—खानेके बाद फौरन एनिमा नही लेना चाहिए। खाली पेट या खानेके तीन-चार घंटे बाद लेना अच्छा है। लेकिन खानेके बाद अगैर कभी तत्काल दर्द वगैरहके कारण पेटमे मल निकालनेकी जरूरत हो तो एनिमा लेनेमें कोई हर्ज नही है। एनिमा लेकर फारिग होनेके बाद आम तौरसे भोजन करनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

१८. **उपवासमें एनिमा**—बहुत जरूरी है। बिना एनिमाके उपवास करना हानिकारक ही है। एनिमासे उपवास आसान हो जाता है। उपवास-कालमें आंतोंमें खुराकका—ऊपरका बोझ न पड़नेके कारण भीतर पड़ा मल अपने-आप आगे नहीं सरकता और एनिमा न लिया जाय तो वह अंदर सड़ेगा और उसमें पैदा हुआ विष शरीरके खूनमें मिल जायगा।

२. मिट्टीकी पट्टी

मिट्टी बहुत उपयोगी वस्तु है। शरीरके जिस हिस्सेपर मिट्टी-की पट्टी रखी जाती है उसके नीचे तथा आस-पासके भागकी भीतरी गरमी-को वह खींच लेती है। इसीलिए मिट्टीकी पट्टीकी ठंडक धीरे-धीरे कम होती जाती है। लगभग पौन घंटेमें और कभी-कभी आध घंटेमें ही, ठंडक बिल्कुल चली जाती है, मिट्टीका पानी सूख जाता है। इस प्रकार गरमीके दूर होनेसे वहां पैदा हुई शिथिलता जाती रहती है और आंतोंमें गतिशीलता आ जाती है। यही कारण है कि मिट्टीसे तत्काल फायदा मालूम होता है। कब्ज दूर करनेके उपाय में मिट्टीकी पट्टी कुदरती उपचारका एक विशेष

अंग बन गया है। चोट, सिरके भारीपन, पेटके दर्द, फोड़े तथा डंक आदि भी उसका सफलतापूर्वक प्रयोग होता है।

मिट्टी बहुत साफ होनी चाहिए, लेकिन ज्यादा चिकनी या रेतीली न न खादवाली। खूब मुलायम हो, कंकरीली नहीं। अगर कहीं मिट्टी सूखी मिलती हो तो उसे धूपमें सुखाकर कूटकर महीन करके रख छोड़ें। जमीन ऊपरी सतहकी मिट्टी प्रायः साफ नहीं मिलती, एक-डेढ़ फुट नीचे खोदव अच्छी मिट्टी पाई जा सकती है।

साफ मिट्टीको ठंडे पानीसे गूधकर करीब आध इंच मोटी पट्टी बना चाहिए। सामान्यतया एक बार इस्तेमालकी हुई मिट्टीको दूस बार काममें नहीं लाना चाहिए।

३. स्नान

कटि-स्नान

व्यक्तिके डीलडौलके हिसाबसे छोटा या बड़ा टब लेना चाहिए। उस पानी उतना भरना चाहिए कि बैठनेपर जांघका ऊपरी हिस्सा और पेड़ पानीमें रहे। पानी ६४ से ६८ डिग्री फारेनहाइटका होना चाहिए, अथव कुएं-नल या नदीसे जिस मौसममें जैसा ताजा पानी मिले। पानीके अंदर अंदर पेड़ूको नाभिसे एक मोटे, खुरदरे तौलिएसे नीचेकी ओर तथा दाहिने से बायें और बायेंसे दाहिने, बिना रुके तेजीसे मलना चाहिए। शरीरमें ठीक-

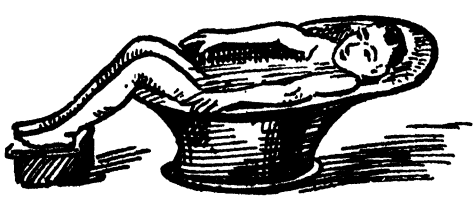

ठीक ठंडक आ जाने तक मलना जारी रखना चाहिए। शुरूमें पांच-दस मिनट काफी होंगे। बादको कुछ समय २०-२५ मिनटतक बढ़ाया जा सकता है। पर बहुत कमजोरों तथा बच्चोंके लिए तो कुछ ही मिनट बस होंगे। ध्यान रखें कि नाभिसे ऊपरका तथा जांघसे नीचेका हिस्सा ठंडा न किया जाय।

उन हिस्सोंमें प्रायः रक्तकी कमी रहती है, इसलिए उन्हें ऊनी कपड़ेसे ढंक देना चाहिए। कटि-स्नानके बाद शरीरको तुरत गरमाना चाहिए। खुली हवामें तेजीसे टहलने जाकर या दूसरा कोई व्यायाम करके गरमी लानी चाहिए। नाजुक दशावाले या बहुत नाजुक रोगियोंको गरमी लानेके लिए कंबल उढ़ाकर बिस्तरोंमें लिटाया जा सकता है। यदि गरमी देरसे आती हो तो पेड़ू पर एक ऊनी पट्टी काममें लानी चाहिए।

ऐसे कटि-स्नान दिनमें एकसे तीन बारतक लिये जा सकते हैं। कितनी देर तक लेना और पानी कितना ठंडा रखना यह रोगीकी दशा देखकर तय करना चाहिए।

बहुतोंको इसके बदलेमें मेहन-स्नान ठीक हो सकता है अथवा एक वक्त मेहन-स्नान और एक वक्त कटि-स्नान भी लिया जा सकता है।

मेहन-स्नान

यह स्त्री-रोगोंके लिए विशेष रूपसे आवश्यक है।

उपर्युक्त टबमें एक छोटी चौकी रख दी जाती है। टबमें पानी इतना डालना चाहिए कि चौकीका सिर्फ तख्ता ऊपरसे सूखा रहे, बाकी हिस्सा पानीमें आ जाय। रोगीको उस चौकीपर बैठकर और खद्दरके छोटे तौलिएको पानीमें भिगोकर जननेंद्रियको (योनिके ऊपरी हिस्सेको) धीरे-धीरे धोना चाहिए। तौलिएमें जहांतक संभव हो अधिक-से-अधिक पानी उठाकर धोना चाहिए। यह आवश्यक है कि जननेंद्रिय की बाहरी जिह्वाको धोना चाहिए, जननेंद्रियके भीतरी हिस्सेको नहीं। और ऊपर-नीचे किसी तरफसे रगड़ना नहीं चाहिए। उसके बाद रोगी या शुश्रूषकको धीरे-धीरे कमरको ऊपर-नीचेसे तथा दायें-बाएंसे गीले तौलिएसे मल देना चाहिए। पुट्ठोंको भी। इस स्नानमें भी पैरका भाग तथा शरीरके ऊपरका हिस्सा सूखा रखना चाहिए। स्नानके बाद शरीरमें गरमी लानी चाहिए—उसी तरह जिस तरह कटि-स्नानमें बतलाई गई है।

मासिकके दिनों में यह स्नान बंद रखना चाहिए। पर यदि रक्त बहुत

अधिक आता हो यानी रक्त-प्रदरकी तरहकी शिकायत हो तो उन दिनों भी यह स्नान जारी रखा जा सकता है। लेकिन यह इस चिकित्साके किसी जानकारकी सलाहसे ही करना चाहिए।

मासिकका काल तीन या चार दिनका मानना चाहिए। इससे ज्यादा दिन लगना अस्वाभाविक है और यह रोगकी गिनतीमें है। वैसी दशामें चार दिनके बाद मेहन-स्नान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

मेहन-स्नानके लिए पानी ५९ से ६० डिग्री तकका ठंडा लेना अच्छा होगा। पर इतना ठंडा न मिले तो रातको मिट्टीके घड़ोंमें रखकर ठंडा किया हुआ लेनेसे काम चल सकता है।

रोगीकी उम्र और दशाके अनुसार यह स्नान दस मिनटसे एक घंटे तक लिया जा सकता है। पर जाड़ेमें कमरेमें आरामदेह गरमी होनी चाहिए।

पानी इस स्नानमें जितना ठंडा रहेगा, लाभ उतना अधिक मिलेगा, लेकिन रोगीकी बरदाश्तके बाहर ठंडा नहीं होना चाहिए।

मेहन-स्नानके लिए कोई भी टब काममें लाया जा सकता है। टब २५-३० सेर पानी आने लायक होना चाहिए और ऐसा कि उसमें चौकी रखकर उसपर आरामसे बैठा जा सके और पानी चौकीके किनारे तक पहुंच जाय। कम पानी होनेपर उसकी ठंडक जल्दी कम हो जायगी—उसमें गरमी आ जायगी और स्नान का लाभ पूरा न मिलेगा। यदि बहता पानी मिले तो बहुत अच्छा है अथवा पानीको कुछ समय धूपमें रखकर तब काममें लाना चाहिए। लेकिन दिनमें धूपमें रखनेके बाद घड़ोंमें रखें और ठंडा हो जानेपर ही काममें लाएं।

मर्दोंको भी मेहन-स्नान उपर्युक्त विधिसे ही लेना चाहिए। उन्हें लिंगेंद्रियके ढकनेके चमड़ेके अगले सिरेको धोना चाहिए। रोगीको चाहिए कि वह उस सिरेको बांए हाथके अंगूठेके बाद की दूसरी-तीसरी अंगुलीके बीच में दबाकर—ढकनेको—त्वचाके अग्रभागको आगे बढ़ा ले और उसे पानीमें धीरे-धीरे धोए। आगे-बढ़ानेका मतलब यह है कि धोनेमें भीतरी हिस्सेपर कोई रगड़—घर्षण न हो। इन हिदायतोंको स्वयं या किसी जानकार

द्वारा अच्छी तरह समझे बिना यह स्नान लाभके बदले हानिकर हो सकता है।

पूर्ण भाप-नहान

यह रोगीको २॥ फुट चौड़ी और ६ फुट लंबी, सुतलीसे बिनी खाटपर लिटाकर, या बेतकी बुनी कुर्सीपर बिठाकर दिया जा सकता है।

खाटपर रोगीको लिटाकर उसके नीचे तीन पतीलियां उबलते पानी-की रख दें—एक रोगीकी पिंडलीके नीचे, दूसरी पुट्ठोंके नीचे, तीसरी कमरके नीचे। उसके बाद रोगीको कंबलसे खाटसहित इस तरह ढक दें कि भाप बाहर न जा सके। रखते समय पतीलियां ढकी रहें, नहीं तो भाप निकल जायगी। जब रोगीपर कंबल डालें तब पती-लियां खोलें। अब रोगीको भाप लगनी शुरू हो जायगी। कंबलसे ढकते समय रोगीका मुंह, सिर सब ढक द। पर चार-पांच मिनटके बाद सिर और मुंहसे कंबल सरकाकर गलेपर कर दें। रोगीको खाटपर लिटानेके पहले आध सेर अच्छा गरम पानी पिलानेसे पसीना ज्यादा आयेगा। अंगीठी या चूल्हेपर एक चौथी पतीली उबलते पानीकी और रखनी चाहिए। आठ-दस मिनट बाद उस पतीलीको पुट्ठेवाली पतीलीसे बदल दें। जब इस पतीलीका पानी फिर उबलने लगे तो उसे कमरवाली पतीलीसे बदल दें। पिंडलीवाली तीली बदलनेकी प्रायः जरूरत नहीं होती।

२०-२५ मिनटमें रोगीके शरीरसे पसीना टपकने लगेगा। रोगी-के सिरपर ठंडे पानीमें भिगोकर निचोड़ा हुआ एक अंगोछा रख देना चाहिए और बीच-बीचमें उसे भिगोते रहना चाहिए। पसीना गरमीमें जल्दी आता है, जाड़ेमें समय अधिक लगता है। रोगीकी प्रकृतिकी भिन्नता-के कारण भी किसीको जल्दी और किसीको देर से आता है। पसीना पहले पीठपर लगने दें, फिर दायें-बायें करवट बदलकर लें तब पेट की तरफ।

छोटे बच्चेको भाप सिर्फ एक पतीली कमरके नीचे रखकर दें।

अगर खाटके बजाय बेतकी बुनी कुर्सीपर देना हो तो कुर्सीके नीचे सिर्फ एक पतीली रखनेसे काम चल जाता है। यदि रोगीको पसीना देरसे

आता हो तो उसके पैरोंको उस समय गरम पानी में रखना चाहिए। रोगी कुर्सी और पतीलीको इस तरह ढकना चाहिए कि भाप बाहर न जाये।

हमेशा यह खयाल रखना चाहिए कि भाप इतनी तेज न हो कि रोगी-को असह्य होजाय। ज्यादा तेज होनेसे त्वचा जलनेका डर रहता ह। पसीना पंद्रहसे बीस मिनट तक बहने देना चाहिए। शरीरके जिन भागों-में दोषकी अधिकता होती है उसमें पसीना देरसे आता है और रोगी ऐसे स्थानोंमें अधिक गरमी लगाना चाहता है। उसकी इच्छा पूरी करनी चाहिए, इससे भाप-नहान का उद्देश्य पूरा होता है।

ज्यादा कमजोर तथा खतरनाक दशाके तथा नाड़ी-दौर्बल्यसे पीड़ित रोगियोंको भाप-नहान नहीं लेना चाहिए। इन्हें मेहन और कटि-स्नानके साथ धूप-नहान जोड़ लेनेसे वही लाभ मिलेगा।

जिन्हें स्वभावतः आसानीसे पसीना आता हो उन्हें भाप-नहान लेने की आवश्यकता नहीं होती। बहुत कमजोरोंको भी भाप-नहानसे बचना चाहिए।

भाप-नहानके बाद ठंडे पानीसे पंद्रह-बीस मिनटका कटि-स्नान लेना अत्यावश्यक है इस कटि-स्नानके पहले या अंतमें छाती, हाथ, पैर, सिर और गर्दनको भी फुर्तीसे धो डालना चाहिए, जिसमे उनकी सफाईके साथ-साथ शरीरमें ठंडक आ जाय। पसीनेके बाद ठंडे पानीसे नहानेमें डरनेकी जरूरत नहीं।

इस कटि-स्नानके बाद शरीरमें कसरतसे इतनी गर्मी लानी चाहिए कि जिसमें हल्का पसीना चमक आये। मजबूत रोगी खुली हवामें, खासकर धूपमें कुछ कसरत करके गर्मी ला सकते हैं। ज्यादा कमजोर रोगी कमरेकी खिड़कियां खुली रखकर रजाई ओढ़कर बिस्तरमें लेटे।

रोगीको भाप देनेके लिए एक सहायककी आवश्यकता होती है। भाप लेना बहुत आसान होनेपर भी किसी जानकारसे समझ लेना चाहिए। बिना समझे देनेसे हानि उठानी पड़ती है।